इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
पर्यटन एवं आतिथ्य प्रबंध विद्यापीठ

बी.टी.एम.सी.-132
प्रबंधन की बुनियादें

खंड

1

व्यावसायिक मूलभूत संकल्पनाएं, रूप तथा वित्तपोषण

इकाई 1
व्यवसाय के स्वरूप तथा क्षेत्र 5

इकाई 2
व्यावसायिक संगठन के रूप-I 29

इकाई 3
व्यावसायिक संगठन के रूप-II 55

इकाई 4
वित्त जुटाने के साधन 66

पाठ्यक्रम निर्माण दल*

इकाई 1–4 (ई.सी.ओ.–01)

प्रो.पी.के. घोष
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. नफीस बेग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़

डॉ.आर.एन.गोयल
देशबन्धु कॉलेज (ई.)
दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली

संकाय सदस्य एस.ओ.एम.एस.

डॉ. आर.के ग्रोवर

डॉ. एन.वी.नरसिम्हम

डॉ. वी.वी.रेड्डी

श्रीमती मधु बब्बर

प्रो. जी. सांबशिव राव
(भाषा संपादक)

इकाई 5–9 (बी.बी.ओ.ई.–108)

श्री विनोद प्रकाश (संपादक)
मोती लाल नहेरू कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. डी.डी. कौशिक,
मेरठ कॉलेज, मेरठ

संकाय सदस्य एस.ओ.एम.एस.

प्रो. आर.के ग्रोवर

डॉ. मधु त्यागी
(पाठ्यक्रम संयोजक)

संशोधन दल

प्रो. जी.के. कपूर
आई.एम.आई. कुतुब इंस्टीट्यूट एरिया
नई दिल्ली

प्रो. मधु त्यागी
निदेशक, प्रबंध अध्ययन विद्यापीठ, इग्नू
(पाठ्यक्रम संयोजक एवं संपादक)

इकाई 10–18 (ई.सी.ओ.–03)

प्रो.पी.के. घोष
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. बी.पी. सिंह
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

श्री पी.एस. प्रसाद
इंस्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड एकांउटेंट्स
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संकाय सदस्य एस.ओ.एम.एस.

डॉ. आर.के ग्रोवर

डॉ. एन.वी. नरसिम्हम

सुश्री मधु सूर्या

श्रीमान नवल किशोर

डॉ. मधु त्यागी

प्रो. जी. सांबशिव राव
(भाषा संपादक)

* बी.टी.एम.सी.–132 वाणिज्य अध्ययन विद्यापीठ(एस.ओ.एम.एस.) के तीन पाठ्यक्रमों से लिया गया है जिनके नाम इस प्रकार हैं **बी.सी.ओ.ई.–108, ई.सी.ओ.–01,** एवं **ई.सी.ओ.–03**

पाठ्यक्रम निर्माण एवं अनुकूलन दल

प्रो. जितेन्द्र श्रीवास्तव, निदेशक, एस.ओ.टी.एच.एस.एम. **(अध्यक्ष)**
डॉ. पारोमिता शुक्लाबैद्या, सहायक प्राध्यापक, एस.ओ.टी.एच.एस.एम.
डॉ. सोनिया शर्मा, सहायक प्राध्यापक, एस.ओ.टी.एच.एस.एम.
डॉ. तांगजाखोम्बी अकोइजम, सहायक प्राध्यापक, एस.ओ.टी.एच.एस.एम.
डॉ. अरविन्द कुमार दुबे, सहायक प्राध्यापक, एस.ओ.टी.एच.एस.एम. **(संपादक)**

कार्यक्रम संयोजक

डॉ. अरविन्द कुमार दुबे
सहायक प्राध्यापक, एस.ओ.टी.एच.एस.एम.

पाठ्यक्रम संयोजक

डॉ. पारोमिता शुक्लाबैद्या, सहायक प्राध्यापक, एस.ओ.टी.एच.एस.एम.
डॉ. तांगजाखोम्बी अकोइजम, सहायक प्राध्यापक, एस.ओ.टी.एच.एस.एम.

खंड संयोजक और सम्पादक

डॉ. तांगजाखोम्बी अकोइजम, सहायक प्राध्यापक, एस.ओ.टी.एच.एस.एम.

संकाय सदस्य

प्रो. जितेन्द्र श्रीवास्तव, निदेशक, एस.ओ.टी.एच.एस.एम. (अध्यक्ष)
डॉ. पारोमिता शुक्लाबैद्या, सहायक प्राध्यापक, एस.ओ.टी.एच.एस.एम.
डॉ. अरविन्द कुमार दुबे, सहायक प्राध्यापक, एस.ओ.टी.एच.एस.एम.
डॉ. हरकीरत बैंस, सह–प्राध्यापक, एस.ओ.टी.एच.एस.एम.
डॉ. सोनिया शर्मा, सहायक प्राध्यापक, एस.ओ.टी.एच.एस.एम.
डॉ. तांगजाखोम्बी अकोइजम, सहायक प्राध्यापक

सामग्री निर्माण दल

श्री तिलक राज
सहायक कुलसचिव (प्रकाशन)
एम.पी.डी.डी.,इग्नू, नई दिल्ली

श्री यशपाल
अनुभाग अधिकारी (प्रकाशन)
एम.पी.डी.डी.,इग्नू, नई दिल्ली

वर्तनी शोधन

डॉ. सुरेश कुमार गोहे

टंकण सहायक

श्रीमती कौशल्या सैनी

सितम्बर, 2019
© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, 2019
ISBN : 978-93-89499-36-0

सर्वाधिकार सुरक्षित, इस कार्य का कोई भी अंश इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना किसी भी रूप में मिमियोग्राफ (चक्र मुद्रण) द्वारा या अन्यथा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम के बारे में अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के मैदान गढ़ी नई, दिल्ली – 110068 स्थित कार्यालय से प्राप्त की जा सकती है।

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय नई दिल्ली की ओर से कुलसचिव एम.पी.डी.डी इग्नू द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।
लेज़र टाइपसेटर : टेसामीडिया एण्ड कंप्यूटर्स, सी–206, ए.एफ.ई.2, जामिया नगर, नई दिल्ली
मुद्रक : मैसर्स ए–वन ऑफसेट प्रिंटर्स, 5/34, कीर्ति नगर, इंडस्ट्रियल एरिया, नई दिल्ली–110015 द्वारा मुद्रित।

खंड 1 व्यावसायिक मूलभूत संकल्पनाएं, रूप तथा वित्तपोषण

इस खंड में पर्यटन प्रबंधन कार्यक्रम के अंतर्गत बी.(वोक.) का मुख्य अनुगामी पाठ्यक्रम बी.टी.एम.सी-132 प्रबंधन की बुनियादें का परिचय दिया गया है। यह खंड व्यवसाय की प्रकृति एवं उद्देश्य, व्यावसायिक कार्यकलाप के वर्गीकरण, उद्यमकर्त्ता की परिभाषा एवं विशेषताएं, व्यावसायिक संगठन के विभिन्न रूप, व्यावसायिक संगठन की पसंद को प्रभावित करने वाले कारकों तथा वित्त जुटाने के तरीकों से संबंधित है।

इकाई 1 में व्यवसाय की प्रकृति तथा उद्देश्य, व्यावसायिक कार्यकलापों का वर्गीकरण, विभिन्न व्यावसायिक कार्यकलापों के बीच संबंध, व्यावसायिक संगठन की परिभाषा तथा उद्यमकर्त्ता की परिभाषा आदि से संबंधित वर्णन है।

इकाई 2 में व्यावसायिक संगठन के विभिन्न रूप बताए गए हैं और प्रत्येक रूप के लक्षणों, गुणों तथा सीमाओं की चर्चा की गई है।

इकाई 3 में व्यावसायिक संगठन के सभी रूपों की परस्पर तुलना की गई है और उन तत्वों का विश्लेषण किया गया है जिनका व्यावसायिक संगठन के लिए चुने जाने वाले रूप पर प्रभाव पड़ता है।

इकाई 4 में वित्तीय आवश्यकताओं के प्रकार तथा वित्त प्राप्त करने की विभिन्न विधियों का वर्णन किया गया है।

इकाई 1 व्यवसाय के स्वरूप तथा क्षेत्र

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 मानवीय कार्यकलाप

1.3 व्यवसाय

- 1.3.1 व्यवसाय के मुख्य लक्षण
- 1.3.2 व्यवसाय के उद्देश्य
- 1.3.3 व्यवसाय का वर्गीकरण

1.4 उद्योग

- 1.4.1 उद्योगों का वर्गीकरण

1.5 वाणिज्य

- 1.5.1 व्यापार
- 1.5.2 व्यापार में सहायक कार्य

1.6 व्यापार, उद्योग और वाणिज्य के बीच सम्बन्ध

1.7 संगठन

1.8 उद्यमकर्त्ता (Entrepreneur)

- 1.8.1 एक उद्यमकर्त्ता के लक्षण

1.9 सारांश

1.10 शब्दावली

1.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.13 अभ्यास के लिए प्रश्न

1.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात्, आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- मानवीय कार्यकलाप के स्थूल वर्गों को पहचान सकें;
- 'व्यवसाय क्या है' इसका वर्णन कर सकें;
- व्यवसाय के लक्षणों तथा उद्देश्यों को सूचीबद्ध कर सकें;
- व्यावसायिक कार्यकलाप का वर्गीकरण कर सकें; तथा
- व्यावसायिक संगठन के स्वरूप का वर्णन कर सकें।

1.1 प्रस्तावना

हम अपने दैनिक जीवन में व्यवसाय, वाणिज्य, व्यापार, उद्योग आदि शब्दों का बहुत बार प्रयोग करते हैं। 'व्यावसायिक संगठन' में इन शब्दों का एक निश्चित अर्थ होता है। इस परिचयात्मक इकाई के अध्ययन से आप इन शब्दों के सही अर्थ समझ सकेंगे। इस इकाई

में आप आर्थिक एवं गैर-आर्थिक कार्यकलाप के अंतर, व्यवसाय के उद्देश्यों, व्यावसायिक कार्यकलाप के वर्गीकरण, संगठन के महत्व तथा व्यवसाय में उद्यमकर्त्ता की भूमिका के बारे में भी जानकारी प्राप्त करेंगे।

1.2 मानवीय कार्यकलाप

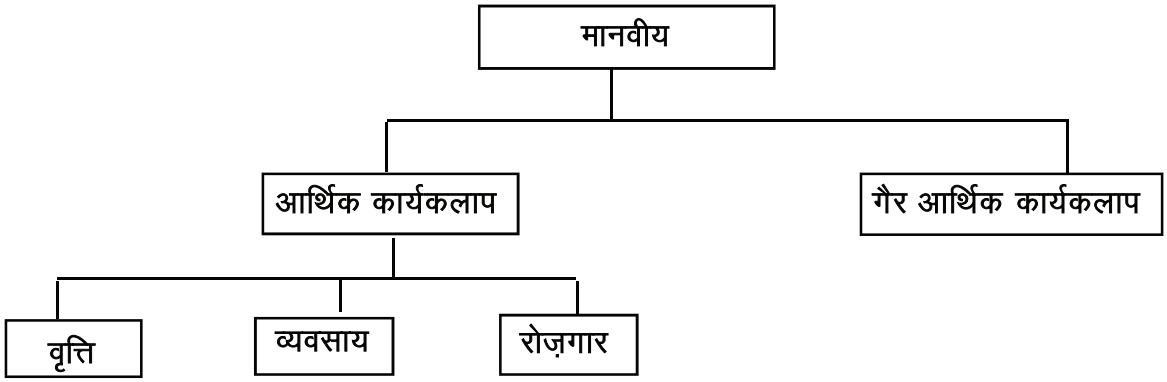
सुबह बिस्तर से उठने से लेकर रात के सोने के समय तक हम कई प्रकार के कार्य करते है। सुबह हम बिस्तर से उठते हैं, दाँत साफ करते हैं, स्नान करते हैं और नाश्ता करते हैं। उसके बाद बच्चे पढ़ने के लिए स्कूल या कॉलेज जाते हैं, बड़े लोग काम करने के लिए कार्यालय, कारखाना, दुकान या खेत में जाते हैं तथा गृहिणियाँ घर पर काम करती हैं। शाम को हम लोग घर वापस आते हैं, भोजन करते हैं और सो जाते हैं। इस प्रकार हम सुबह से शाम तक जिन कार्यों में लगे रहते हैं, वे सब मानवीय कार्यकलाप कहलाते हैं।

यदि आप इन मानवीय कार्यकलाप का ध्यान से अध्ययन करें तो पायेंगे कि इनमें से कुछ कार्य ऐसे हैं जिन्हें करने से हमे आर्थिक लाभ होता है। जैसे कारखाने, कार्यालय या खेत में किए गए काम। कुछ अन्य कार्य करने से हमें कोई प्रत्यक्ष आर्थिक लाभ नहीं होता, जैसे – दाँत साफ करना, नाश्ता करना, स्कूल जाना, खेलना, गृहिणी द्वारा भोजन पकाया जाना आदि। इस प्रकार हम मानवीय कार्यकलाप को दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं - (1) गैर-आर्थिक कार्यकलाप तथा (2) आर्थिक कार्यकलाप।

1) **गैर-आर्थिक कार्यकलाप (Non-economic Activities) :** ये वे कार्य हैं जो मनुष्यों द्वारा स्नेह, प्रेम, सामाजिक कर्त्तव्य, धार्मिक कर्त्तव्य, शारीरिक आवश्यकता, देशभक्ति आदि भावनाओं से प्रेरित होकर किए जाते हैं, न कि धनोपार्जन के लिए। गृहिणी द्वारा परिवार के लिए भोजन बनाया जाना, बच्चों का स्कूल जाना, या विभिन्न खेल खेलना, लोगों का मंदिर या मस्जिद में प्रार्थना के लिए जाना, एक समाज सेवक द्वारा गरीबों के उत्थान के लिए कार्य करना आदि गैर-आर्थिक कार्यों के कुछ उदाहरण हैं। इन कार्यों में भाग लेने वाले व्यक्तियों को कोई प्रत्यक्ष आर्थिक लाभ प्राप्त नहीं होता।

2) **आर्थिक कार्यकलाप (Economic Activities) :** ये वे कार्य हैं जो मनुष्यों द्वारा जीविका या धन कमाने के लिए किए जाते हैं। ये आर्थिक कार्यकलाप वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन, विनिमय एवं वितरण से संबंधित होते हैं। उदाहरण के लिए, एक डाक्टर का अस्पताल में काम करना, एक अध्यापक का स्कूल में काम करना, एक कर्मचारी का कार्यालय जाना, एक किसान का खेत में काम करना, आदि कार्य। ये सब लोग जीविकोपार्जन के लिए या धन प्राप्त करने के लिए ही ऐसे करते हैं।

इन आर्थिक कार्यकलापों को हम तीन वर्गों में विभाजित कर सकते हैं – (क) व्यवसाय (ख) वृत्ति तथा (ग) रोजगार। मानवीय कार्यकलाप के वर्गीकरण के लिए चित्र 1.1 देखिए।



चित्र 1.1 : मानवीय कार्यकलाप का वर्गीकरण

व्यवसाय (Business) : ऐसा कोई भी कार्य जो मुख्य रूप से लाभ कमाने के उद्देश्य से किया जाता है, व्यावसायिक कार्य कहलाता है। लाभ अर्जित करने से इस उद्देश्य की पूर्ति आवश्यकताओं को पूरा करने वाली वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन द्वारा की जाती है अथवा विनिमय द्वारा अथवा दोनों के द्वारा सम्मिलित रूप से। अतः हम व्यवसाय को इस प्रकार परिभाषित कर सकते हैं – ऐसा कोई भी कार्य जिसका संबंध लाभ कमाने के उद्देश्य से आवश्यकताओं को पूरा करने वाली वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन अथवा विनिमय से होता। साबुन का उत्पादन, अंडों का विक्रय, टेलीविजन सेटों का उत्पादन, परिवहन आदि व्यवसाय के उदाहरण हैं। जो व्यक्ति व्यवसाय में लगा होता है वह व्यावसायी अथवा उद्यमकर्त्ता के नाम से जाना जाता है। इसी प्रकार किसी व्यावसायिक कार्य को करने के लिए संगठित की गई फर्म व्यावसायिक उद्यम या व्यावसायिक फर्म कहलाती है। व्यवसाय के बारे में और अधिक जानकारी आप इस इकाई में आगे प्राप्त करेंगे।

वृत्ति (Profession) : ऐसा कोई भी कार्य संबंध वृत्तिक ज्ञान, शिक्षण एवं प्रशिक्षण पर आधारित विशेष प्रकार की व्यक्तिगत सेवाएं प्रदान करना है वृत्ति कहलाता है। डॉक्टरों, वकीलों तथा चार्टर्ड एकाउंटेंटों द्वारा प्रदान की गई सेवाएं इसी वर्ग के अंतर्गत आती हैं। साधारणतया प्रत्येक वृत्ति वर्ग के लिए एक वृत्तिक बनी होती है। उदाहरण के लिए, बार कौंसिल आफ इंडिया वकीलों की एक ऐसी ही वृत्तिक संस्था है जो भारत में वकालत की वृत्ति का मार्गदर्शन तथा नियमन करती है। ऐसी वृत्तिक संस्था संबंधित वृत्ति को अपनाने के लिए आवश्यक शिक्षण व प्रशिक्षण के स्वरूप तथा प्रकार निर्धारित करती है। प्रत्येक वृत्तिक का संबंधित वृत्ति संस्था का सदस्य बनना आवश्यक है तथा उसे इस प्रकार की संस्था द्वारा निर्धारित आचार-संहिता का पालन करना चाहिए। वृत्तिक प्रदान की गई सेवाओं के लिए कुछ शुल्क वसूल करते हैं।

रोजग़ार (Employment) : नियोक्ता द्वारा किसी समझौते या सेवा-नियमों के अधीन किसी व्यक्ति को सौंपा गया कार्य ''रोजगार'' वर्ग के अंतर्गत आता है। वह व्यक्ति जो इस प्रकार के कार्य का दायित्व ग्रहण करता है कर्मचारी कहलाता है। इस प्रकार सौंपे गए कार्य को पूरा करने के बदले में कर्मचारी नियोक्ता से मजदूरी अथवा वेतन-भत्ता, लाभांश आदि के रूप में पारिश्रमिक प्राप्त करता है। ''रोजगार'' को नौकरी भी कहते हैं। कारखाने में काम करना, कार्यालय में काम करना, होटल में काम करनाए कॉलेज में कुछ काम करना ''रोजगार'' के कुछ उदाहरण हैं। वृत्ति की दृष्टि से योग्य व्यक्ति भी विभिन्न व्यावसायिक संगठनों के कर्मचारियों की तरह काम कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, सरकारी/निजी अस्पतालों में काम करने वाले डॉक्टर, कारखाने में काम करने वाले इंजीनियर आदि।

यद्यपि व्यवसाय, वृत्ति एवं रोजगार में कुछ अंतर है फिर भी इनका आपस में संबंध है। व्यावसायिक उद्यम देश में एक बहुत बड़ी संख्या में लोगों को रोजगार प्रदान करते हैं। इसी प्रकार वृत्तिक जैसे इंजीनियर, चार्टर्ड एकाउंटेंट, लागत लेखाकार, प्रबंध परामर्शी, कानूनी विशेषज्ञ, डॉक्टर आदि जटिल तकनीकी समस्याओं के समाधान के लिए व्यावसायिक फर्मों में काम करते हैं। इस प्रकार व्यावसायिक उद्यम वृत्तिकों तथा साधारण जनता को रोजगार के अवसर प्रदान करते हैं। साथ ही व्यवसाय की सफलता भी व्यवसाय में काम करने वाले वृत्तिकों तथा कर्मचारियों पर निर्भर करती है।

1.3 व्यवसाय

अभी तक आपने पढ़ा कि मनुष्यों के आर्थिक कार्यकलाप को व्यवसाय, वृत्ति और रोजगार में वर्गीकृत किया जा सकता है। इन तीन वर्गों में वृत्ति और रोजगार इस पाठ्यक्रम के

कार्यक्षेत्र के बाहर हैं, यद्यपि वे भी काफी महत्वपूर्ण हैं। यहाँ मुख्य रूप से हमारा संबंध व्यवसाय से है। अतः आइए, हम व्यवसाय के बारे में अधिक विस्तार से चर्चा करें।

1.3.1 व्यवसाय के मुख्य लक्षण

आप पढ़ चुके हैं कि व्यवसाय का संबंध लाभ अर्जित करने की इच्छा से आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली वस्तुओं के उत्पादन तथा/अथवा विनिमय और सेवाओं में किए गए मानवीय कार्यकलाप से है। आइए, अब हम व्यवसाय की मुख्य विशेषताओं का अध्ययन करें।

व्यवसाय के निम्नलिखित पाँच मुख्य लक्षण होते हैं।

1) **वस्तुओं और सेवाओं का कारोबार :** व्यवसाय में वस्तुओं और सेवाओं का कारोबार होता है ये वस्तुएँ उपभोक्ता वस्तुएँ हो सकती हैं जैसे मिठाई, डबलरोटी, कपड़े, जूते आदि। ये वस्तुएँ उत्पादक वस्तुएँ भी हो सकती हैं जिनका प्रयोग उपभोग के लिए अन्य वस्तुओं के उत्पादन में किया जाता है जैसे मशीनरी, उपस्कर, आदि। व्यवसाय में सेवाओं का भी कारोबार होता है। जैसे परिवहन, भंडारण, बैंक, सेवा, बीमा आदि जो अमूर्त तथा अदृश्य वस्तुएँ होती हैं।

2) **उत्पादन तथा/अथवा विनिमय :** आप किसी आर्थिक कार्य को व्यवसाय तभी कह सकते हैं जब उसका संबंध मूल्य के बदले वस्तुओं के उत्पादन और सेवाओं, हस्तांतरण, विनिमय अथवा विक्रय से हो। यदि वस्तुओं का उत्पादन स्वयं के उपभोग के लिए या किसी को उपहार में देने के लिए किया जाता है, तो इन कार्यकलापों को व्यवसाय नहीं माना जाता। किसी भी व्यावसायिक कार्यकलाप में दो पक्षों का होना आवश्यक है – एक क्रेता तथा दूसरा विक्रेता। इस प्रकार के कार्यकलाप का संबंध क्रेता और विक्रेता के बीच वस्तुओं के हस्तांतरण या वस्तुओं के विनिमय से होना चाहिए। वस्तुओं का विनिमय वस्तुओं के बदले में या मुद्रा के बदले में किया जा सकता है।

3) **कारोबार में निरंतरता और नियमितता :** किसी एक लेनदेन को व्यवसाय नहीं माना जा सकता। किसी कार्य को व्यवसाय तभी माना जा सकता है जब उसका निष्पादन लगातार या बार-बार किया गया हो। उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति अपने रहने का मकान बेच देता है उसे व्यवसाय नहीं माना जाएगा। लेकिन यदि वह बार-बार मकान खरीदता है और दूसरों को बेचता है तो इस प्रकार का कार्य व्यवसाय के अंतर्गत आता है। कोई लेनदेन कितनी जल्दी-जल्दी होना चाहिए यह कार्य की प्रकृति पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए, एक जहाज बनाने वाली कंपनी को एक जहाज का निर्माण करने और बेचने में काफी समय लगता है। लेकिन एक सब्जी बेचने वाला सुबह बाजार से सब्जी खरीदता है और शाम तक अपने ग्राहकों के बेच देता है। ये दोनों ही प्रकार के कार्य व्यवसाय माने जाएँगे।

4) **लाभार्जन – प्रमुख प्रयोजन :** लाभ अर्जित करना व्यवसाय का प्रमुख प्रयोजन है। लेकिन इसका यह अर्थ कदापि नहीं होना चाहिए कि व्यावसायिक कार्यकलाप में सेवा का कम महत्व है। वास्तव में कोई भी व्यवसाय केवल तभी प्रगति कर सकता है जब वह अपने ग्राहकों को संतुष्ट करने में समर्थ हो। व्यवसाय को बनाए रखने के लिए विकास उसके विस्तार तथा समाज से उसके लिए मान्यता प्राप्त करने के लिए लाभ अर्जित करना अत्यंत आवश्यक है।

5) **जोखिम का तत्व :** प्रत्येक व्यवसाय में हानि होने की संभावना बनी रहती है। हानि उठाने की इस संभावना को ही जोखिम कहा जाता है। व्यवसाय में जोखिम का तत्व उन कारणों से विद्यमान रहता है जिन पर उद्यम का वश नहीं होता। जोखिम दो प्रकार

की होती है – (1) ऐसी जोखिम जिसकी संभावना का अनुमान लगाया जा सकता है तथा जिसका बीमा कराया जा सकता है। आग, बाढ़, चोरी आदि से होने वाली हानियाँ ऐसी जोखिम के उदाहरण हैं। (2) ऐसी जोखिम जिसकी संभावना का अनुमान नहीं लगाया जा सकता और न ही जिसका बीमा कराया जा सकता हैं जैसे – बदलती हुई तकनीक, माँग में कमी, फैशन का बदलता रहना, कच्चे माल की पूर्ति में कमी आदि। इस प्रकार की सभी जोखिम पूर्ण रूप से उद्यम को ही वहन करनी पड़ती है।

1.3.2 व्यवसाय के उद्देश्य

जैसा कि आप जानते हैं व्यवसाय के प्रमुख उद्देश्य लाभ अर्जित करना है। यद्यमि व्यवसाय की सफलता में लाभ की एक महत्वपूर्ण भूमिका होती है फिर भी लाभ अर्जित करने के लिए एकमात्र उद्देश्य को लेकर व्यवसाय अधिक लम्बे समय तक नहीं चल सकता। जैसा कि हेनरी फोर्ड ने कहा है, '' व्यवसाय का अर्थ केवल धन के पीछे भागना नहीं बल्कि इसका उद्देश्य समाज की सेवा करना होना चाहिए। '' उर्विक के अनुसार, ''जिस प्रकार भोजन करना ही जीवन का एकमात्र उद्देश्य नहीं हो सकता। उसी प्रकार लाभ अर्जित करना भी व्यवसाय का एकमात्र उद्देश्य नहीं हो सकता।'' समाज की सेवा व्यवसाय का एक अन्य महत्वपूर्ण उद्देश्य माना जाता है। वास्तव में कुछ लेखक तो समाज की सेवा को व्यवसाय का एक प्रमुख उद्देश्य मानते हैं और कहते हैं कि यही उद्देश्य व्यवसाय के एक महत्वपूर्ण मानवीय कार्यकलाप के रूप में बने रहने का औचित्य सिद्ध रहता है। इसीलिए जहाँ व्यवसायी के लिए व्यवसाय में बने रहने के लिए लाभ अर्जित करना आवश्यक है, वहीं व्यवसाय को बनाए रखने के लिए तथा उसके विकास के लिए उसका लक्ष्य इससे कहीं अधिक ऊपर होना चाहिए।

व्यवसाय के उद्देश्यों का वर्णन तीन व्यापक शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है :
(i) आर्थिक उद्देश्य (ii) सामाजिक उद्देश्य (iii) मानवीय उद्देश्य।

आर्थिक उद्देश्य : मूलतः एक आर्थिक कार्य होने के कारण व्यवसाय के प्रमुख उद्देश्य आर्थिक हैं। कुछ आर्थिक उद्देश्य निम्न हैं :

1) संतोषप्रद लाभ अर्जित करना
2) नए बाजारों का पता लगाना तथा और अधिक ग्राहक बनाना
3) फर्म की व्यावसायिक क्रियाओं का विकास एवं विस्तार
4) नव-प्रवर्तन करना तथा वस्तुओं और सेवाओं में सुधार करना ताकि ग्राहक कम मूल्य पर और अधिक उन्नत वस्तुएँ और सेवाएँ प्राप्त कर सकें।

सामाजिक उद्देश्य : चूँकि व्यवसाय समाज का ही एक अंग है इसीलिए समाज के प्रति भी इसके कुछ कर्त्तव्य हैं। व्यवसाय के कुछ प्रमुख सामाजिक उद्देश्य इस प्रकार हैं :

1) देश के लोगों को अधिक से अधिक रोजगार के अवसर प्रदान करना।
2) समाज को अच्छी किस्म की वस्तुएँ प्रदान करना।
3) उचित मूल्य पर वस्तुएँ उपलब्ध कराना।
4) निवेशकर्त्ताओं के लिए उचित लाभ सुनिश्चित करना।
5) मुनाफाख़ोरी तथा अन्य अनुचित व्यवहार से समाज को बचाना।
6) राष्ट्रीय हितों तथा राष्ट्रीय प्राथमिकताओं को ध्यान में रखते हुए वस्तुओं का उत्पादन करना।

मानवीय उद्देश्य : व्यावसायिक कार्यकलाप साधारणतया कर्मचारियों द्वारा संपन्न किए जाते हैं जो स्वयं मानव होते हैं। वास्तव में व्यावसायिक उद्यम की कार्यकुशलता और सफलता उसके कर्मचारियों को प्राप्त प्रेरणा तथा उनकी योग्यता पर निर्भर है। इसलिए अपने कर्मचारियों के हितों की रक्षा के लिए व्यवसाय को कुछ मानवीय उद्देश्य भी अवश्य रखने चाहिए। कुछ महत्वपूर्ण मानवीय उद्देश्य इस प्रकार हैं :

1) मजदूरी तथा प्रोत्साहन के रूप में कर्मचारियों के साथ उचित व्यवहार
2) कर्मचारियों के लिए अधिक अच्छा वातावरण एवं कार्य करने की परिस्थितियाँ उपलब्ध कराना
3) कर्मचारियों को अपने काम से संतोष प्राप्त हो ऐसी व्यवस्था करना
4) कर्मचारियों को अधिकाधिक पदोन्नति तथा विकास के अवसर प्रदान करना

1.3.3 व्यवसाय का वर्गीकरण

व्यवसाय के बारे में हमने जो कुछ अब तक बताया है उसे याद कीजिए। बताया गया था कि लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन तथा/अथवा विनिमय को व्यवसाय कहते हैं। इसका यह अर्थ हुआ कि व्यवसाय का संबंध दो पहलुओं से होता है – उत्पादन और विनिमय। इसी आधार पर हम व्यावसायिक कार्यकलाप को दो वर्गों में वर्गीकृत कर सकते हैं। उत्पादन से संबंधित सभी कार्यकलाप को हम प्रथम वर्ग के अंतर्गत रख सकते हैं। इसी प्रकार विनिमय से संबंधित सभी कार्यकलाप को द्वितीय वर्ग के अंतर्गत रखा जा सकता है। प्रथम वर्ग को 'उद्योग' कहा जाता है तथा द्वितीय वर्ग को 'वाणिज्य'।

बोध प्रश्न 1

1) आर्थिक कार्य तथा गैर-आर्थिक कार्य के बीच मुख्य अंतर क्या है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) व्यवसाय किसे कहते हैं ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) ''वृत्ति'' से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4) ''रोजगार'' से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

5) निम्नलिखित कार्यकलाप का व्यवसाय, वृत्ति तथा रोजगार में वर्गीकरण कीजिए :

कार्यकलाप	**वर्गीकरण**
i) सब्जियाँ बेचना	.....
ii) किसी व्यक्ति का औषधियों की दुकान पर सेल्समैन के रूप में कार्य करना	.....
iii) एक डॉक्टर का किसी सरकारी अस्पताल में कार्य करना	.....
iv) एक चार्टर्ड एकाउंटेंट द्वारा निजी प्रैक्टिस प्रारंभ करना	.....
v) बिस्कुट का उत्पादन	.....
vi) एक वकील का निजी प्रैक्टिस प्रारंभ करना	.....
vii) वस्तुओं का परिवहन	.....

6) बताएँ कि निम्नलिखित कथन **सही** हैं अथवा **गलत।**

i) व्यवसाय का एकमात्र उद्देश्य लाभ अर्जित करना है। .....

ii) वृत्ति गैर आर्थिक कार्य है। .....

iii) रोजगार आर्थिक कार्य है। .....

iv) व्यवसाय में जोखिम का तत्व नहीं होता। .....

v) व्यवसाय का संबंध केवल वस्तुओं और सेवाओं के विनिमय से होता है। .....

vi) उद्योग व्यावसायिक क्रिया का एक अंग है। .....

vii) उद्योग और वाणिज्य दोनों मिलकर व्यावसायिक कार्यकलाप होते हैं। .....

viii) किसी कार्य को व्यवसाय तभी माना जाता है जबकि उसका निष्पादन लगातार या बाराबार किया जाता है .....

ix) वृत्ति की स्थिति में स्वामित्व-हित का हस्तांतरण दूसरों को किया जा सकता है। .....

x) धन या जीविका उपार्जन करने के उद्देश्य से किये जाने वाले कार्य आर्थिक कार्यकलाप कहलाते हैं। .....

ix) पिता द्वारा अपने पुत्री का पढ़ाया जाना आर्थिक कार्य है। .....

1.4 उद्योग

जैसा कि आप पढ़ चुके हैं, उद्योग से आशय व्यावसायिक कार्यकलाप के उस अंश से है जिसका संबंध उपलब्ध भौतिक संसाधनों के प्रयोग से आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली वस्तुओं के उत्पादन से होता है। उद्योग प्राकृतिक संसाधनों का प्रयोग करते हैं और उन्हें अंतिम उपभोग या और उपयोग के लिए निश्चित स्वरूप प्रदान करते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि औद्योगिक कार्यकलाप का उद्देश्य वस्तुओं को उस रूप में उपलब्ध कराना है जिस रूप में वे उन व्यक्तियों की सुविधाओं, आवश्यकताओं तथा उद्देश्यों के अनुकूल सिद्ध हो सकें जो उन वस्तुओं का उपयोग करेंगे। इस प्रकार उद्योग वस्तुओं के रूपमूलक उपयोगिता (formutility) का सृजन करते हैं। उदाहरण के लिए, खेतों, कारखानों, खानों आदि से विभिन्न प्रकार की वस्तुएं उपलब्ध होती हैं। ये वस्तुएं जनता की सुविधाओं तथा आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। संक्षेप में, उन मनुष्यों के कार्यकलाप उद्योग के अंतर्गत आते हैं जो वस्तुओं के निस्सारण, निर्माण, संसाधन, उत्पादन तथा विरचन कार्यों (fabrication) में लगे हुए होते हैं।

उद्योग का एक दूसरा अर्थ भी होता है। इस दूसरे अर्थ में उद्योग से अभिप्राय कारखानों के ऐसे समूह से होता है जिसे प्रायः किसी विशेष प्रकार की उत्पाद श्रृंखला में विशिष्टता प्राप्त हो। उदाहरण के लिए, वे सब कारखाने जो उर्वरक का उत्पादन करते हैं, सामूहिक रूप से 'उर्वरक उद्योग' कहलाते हैं। इसी प्रकार मोटरों के सभी कारखाने 'मोटर उद्योग' के अंतर्गत आते हैं लेकिन वर्तमान संदर्भ में यह विधि हमारे लिए संगत नहीं है। हमने पहली विधि अपनाई है।

1.4.1 उद्योगों का वर्गीकरण

उद्योगों का वर्गीकरण विभिन्न विधियों से किया जाता है। इन विधियों की सूची नीचे दी गई है।

1) कार्य की प्रकृति के आधार पर

   क) निस्सारक उद्योग

   ख) जननिक उद्योग

   ग) विनिर्माण उद्योग

   घ) निर्माण उद्योग

2) उत्पादित वस्तुओं की प्रकृति के आधार पर

   क) उपभोक्ता वस्तु उद्योग

   ख) उत्पादक वस्तु उद्योग

3) निवेश के स्तर के आधार पर

   क) भारी उद्योग

   ख) हल्के उद्योग

4) कार्य के आकार के आधार पर

   क) छोटे पैमाने के उद्योग

   ख) बड़े पैमाने के उद्योग

5) कार्य क्षेत्र के आधार पर

   क) क्षेत्रीय उद्योग

   ख) राष्ट्रीय उद्योग

   ग) बहुराष्ट्रीय उद्योग

चूँकि इस इकाई में विवेचन का विषय मानवीय कार्य पर ही केन्द्रित है, इसलिए हमारे लिए कार्य की प्रकृति पर आधारित वर्गीकरण ही अधिक उपयुक्त है। अतः आइये, हम लोग प्रथम वर्गीकरण के बारे में अधिक विस्तार से चर्चा करें।

क) निस्सारक उद्योग (Extractive Industries) : पृथ्वी की सतह से अथवा सतह के नीचे से अथवा वायु से या पानी से जैसे खनिज पदार्थ, पशु, पौधे, पेड़ आदि जैसे प्राकृतिक संसाधनों की खोज एवं निस्सारण से संबंधित कार्यकलाप इस वर्ग के अंतर्गत आते हैं। निस्सारक उद्योग समाप्तिकरण उद्योग भी कहलाते हैं क्योंकि प्रत्येक प्रयत्न के बाद संसाधनों में कमी आ जाती है तथा वह सम्पति होती रहती है। खनन, खेती, उत्खनन, शिकार, मछली पकड़ना आदि सभी कार्य इस वर्ग के अंतर्गत आते हैं।

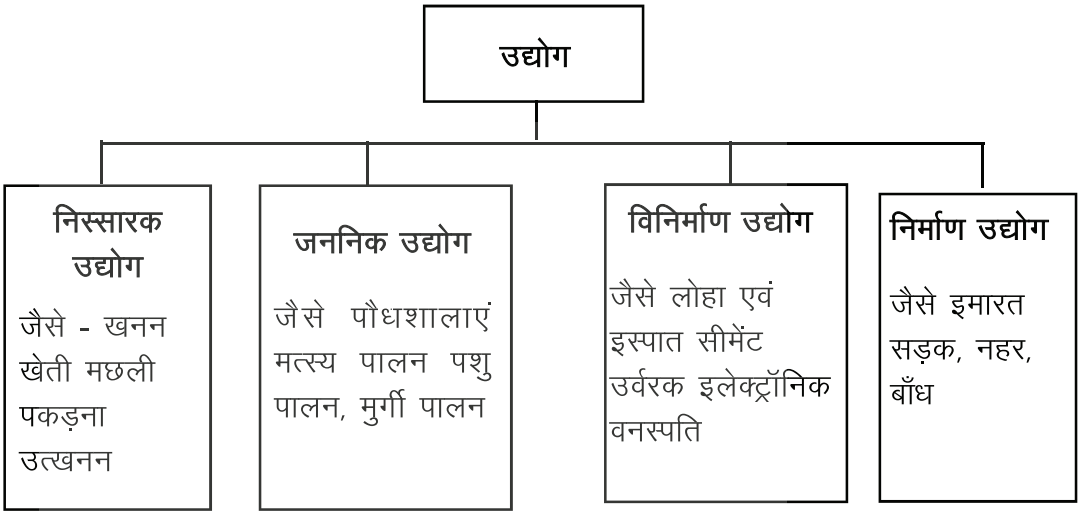
ख) जननिक उद्योग (Genetic Industries) : इस वर्ग के अंतर्गत वे कार्यकलाप आते हैं जिनका संबंध लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से विक्रय के लिए प्रजनन द्वारा पशुओं और पौधों की प्रजाति में वृद्धि करना होता है। जननिक उद्योग के उदाहरण हैं– पौधशालाएँ, जो पौधों की प्रजाति में वृद्धि करके उनका विक्रय करती हैं, मुर्गी पालन फार्म, पशुपालन फार्म, मत्स्य पालन फार्म इत्यादि।

निस्सारण उद्योग और जननिक उद्योग में एक महत्वपूर्ण अंतर होता है। निस्सारण उद्योग में मुनष्य पृथ्वी, समुद्र या वायु से निकाली गई सम्पत्ति में वृद्धि नहीं कर सकता। लेकिन जननिक उद्योग में मनुष्य न केवल प्राकृतिक वस्तुओं के विकास में वृद्धि कर सकता है बल्कि उनका प्रजनन भी कर सकता है।

ग) विनिर्माण उद्योग (Manufacturing Industries) : विनिर्माण उद्योग वे उद्योग होते हैं जो कच्चे माल और अर्ध-निर्मित माल को तैयार माल में रूपांतरित करने में संलग्न होते हैं। साधारणतया निस्सारक उद्योगों के उत्पाद विनिर्माण उद्योगों के लिए कच्चे माल का कार्य करते हैं। दूसरे शब्दों में विनिर्माण उद्योग निस्सारक उद्योग के उत्पादों को रूपमूलक उपयोगिता प्रदान करते हैं। सीमेंट उद्योग, चीनी, उद्योगों के उत्पादों का रूपमूलक उपयोगिता प्रदान करते हैं। सीमेंट उद्योग, चीनी उद्योग, सूती वस्त्र उद्योग, लोहा एवं इस्पात उद्योग उर्वरक उद्योग आदि विनिर्माण उद्योगों के कुछ उदाहरण हैं।

घ) **निर्माण उद्योग (Construction Industries) :** निर्माण उद्योग वे उद्योग होते हैं जिनका संबंध भवन, पुल, बाँध, सड़क, नहर, रेल की पटरी आदि का निर्माण करने से होता है। ये उद्योग विनिर्माण उद्योगों के उत्पादों (जैसे ईंट, सीमेंट, लोहा, एवं इस्पात) तथा निस्सारक उद्योगों के उत्पादों (जैसे पत्थर, लकड़ी) का उपयोग करते हैं। निर्माण उद्योगों के उत्पाद अधिकतर अचल होते हैं। उसकी संस्थापना, निर्माण अथवा संरचना प्रायः एक निश्चित स्थान पर की जाती है।

चित्र 1.2 को देखिए जिसमें उद्योगों का वर्गीकरण उदाहरण सहित दर्शाया गया है।



चित्र 1.2 : कार्य की प्रकृति के आधार पर उद्योगों का वर्गीकरण

जब हम गतिविधि की प्रकृति की बात करते हैं तो हम सेवा उद्योग को भी शामिल कर हैं। ये ऐसे उद्योग है जो किसी भी मूर्त उत्पाद का उत्पादन नहीं करते बल्कि पर्यटन उद्योग, मनोरंजन उद्योग आदि जैसी– एक सेवा प्रदान करते हैं।

बोध प्रश्न 2

1) व्यवसाय एवं उद्योग में अंतर बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

.....

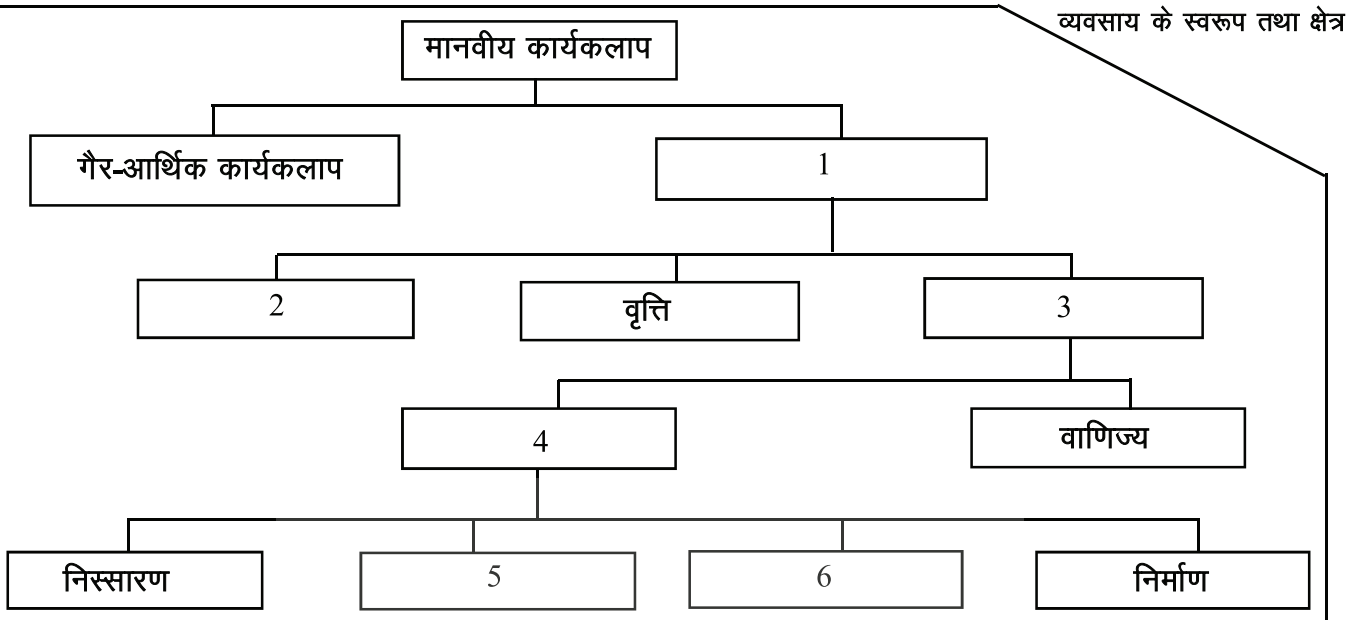
.....

.....

.....

.....

.....



3) निम्नलिखित कार्यकलाप उद्योग के किस वर्ग से संबंधित हैं :

कार्यकलाप	**उद्योग का वर्गीकरण**
i) समुद्र में से मछली पकड़ना	.....
ii) खान से कोयला निकालना	.....
iii) कपड़ा बुनना	.....
iv) बाँध का निर्माण	.....
v) लकड़ी का फर्नीचर बनाना	.....
vi) पशु-पालन	.....
vii) रेल-पथ का विकास	.....
viii) रेल के इंजन का उत्पादन	.....

1.5 वाणिज्य

आप पढ़ चुके हैं कि व्यावसायिक कार्यकलाप को दो वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है: (1) उद्योग तथा (2) वाणिज्य। आपने यह भी पढ़ा कि औद्योगिक कार्यकलाप का संबंध आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन से होता है। जब तक इन वस्तुओं और सेवाओं को उन लोगों तक नहीं पहुँचाया जाता जिन लोगों को उनकी आवश्यकता है तब तक ये मानवीय आवश्यकताओं को पूरा करने के अपने उद्देश्य को पूरा नहीं करतीं। इसीलिए, आवश्यक होता है कि उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं को उचित स्थान पर, उचित समय पर, उचित मात्रा में, उचित मूल्य पर तथा उचित ढंग से उपभोक्ताओं तक पहुँचाया जाए। इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वाणिज्य कार्य का आरंभ हुआ। **ऐसे सभी कार्यकलाप जो इन वस्तुओं के उत्पादकों और उपभोक्ताओं में संबंध स्थापित करते हैं तथा उसके बीच वस्तुओं का निरंतर और निर्विघ्न प्रवाह बनाए रखते हैं, "वाणिज्य" के अंतर्गत आते हैं।**

उत्पादक से लेकर उपभोक्ता तक वस्तुओं और सेवाओं के निरंतर और निर्विघ्न प्रवाह में कई रुकावटें और बाधाएँ आती हैं। उदाहरण के लिए, किसी एक व्यक्ति द्वारा उत्पादित वस्तु का किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उपभोग किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में जब तक उत्पादक

और उपभोक्ता एक दूसरे को पहचान नहीं लेते तब तक उनके बीच वस्तुओं के विनिमय का प्रश्न ही नहीं उठता। इसी को **व्यक्ति संबंधी बाधा** कहा जाता है। इसी प्रकार किसी वस्तु का क्रय करने के लिए उपभोक्ताओं को उस वस्तु के अस्तित्व का तथा उसकी विशेषताओं का ज्ञान होना चाहिए। इसी कारण उपभोक्ताओं को इस प्रकार की सूचनाएँ उपलब्ध कराने की आवश्यकता होती है। इसी को **ज्ञान संबंधी बाधा** कहा जाता है। उत्पादन के समय और उपभोग के समय में अन्तराल के कारण उत्पन्न होने वाली बाधा **समय संबंधी बाधा** कहलाती है। कई स्थितियों में उत्पादन किसी एक स्थान पर होता है और उनका उपभोग किसी दूसरे स्थान पर होता है। इसीलिए वस्तुओं को उनके उत्पादन के स्थान से उनके उपभोग के स्थान तक ले जाना आवश्यक होता है। इसी से स्थान संबंधी बाधा उत्पन्न होती है। वाणिज्य इन सब बाधाओं को दूर करता है और उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं के बीच वस्तुओं के विनिमय को सुगम बनाता है। इस खंड में आगे आप विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे कि इन बाधाओं को उन विभिन्न व्यावसायिक कार्यकलाप द्वारा किस प्रकार दूर किया जाता है जो वाणिज्य का ही एक भाग होते हैं।

संक्षेप में वाणिज्य का संबंध मुख्य रूप से वस्तुओं के क्रय और विक्रय से होता है तथा इसके अंतर्गत वे सभी कार्य भी आते हैं जो क्रेताओं और विक्रेताओं के बीच वस्तुओं के निरंतर और निर्विघ्न प्रवाह को बनाए रखने के लिए आवश्यक हैं। इस प्रकार वाणिज्य के दो मुख्य पहलू होते हैं : (1) वस्तुओं का क्रय और विक्रय तथा (2) वस्तुओं के निरंतर और निर्विघ्न प्रवाह के लिए आवश्यक कार्य। अतः हम वाणिज्य से संबंधित संपूर्ण क्षेत्र को दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं :

1) व्यापार–क्रय और विक्रय से संबंधित कार्य
2) व्यापार में सहायक कार्य – वे कार्यकलाप जो वस्तुओं के निरंतर और निर्विघ्न प्रवाह को सुगम बनाते हैं।

1.5.1 व्यापार (Trade)

आप पढ़ चुके हैं कि वस्तुओं और सेवाओं के क्रय और विक्रय से संबंधित मानवीय कार्यकलाप व्यापार के अंतर्गत आते हैं। अतः लाभ अर्जित करने की इच्छा से किये गये वस्तुओं और सेवाओं के विक्रय, हस्तांतरण या विनिमय को व्यापार में शामिल किया जाता हैं। व्यापार का उद्देश्य उन व्यक्तियों को वस्तुएँ उपलब्ध कराना है जिन्हें उनकी आवश्यकता है तथा जो उनके लिए मूल्य चुकाने के लिए तैयार हैं। इस प्रकार व्यापार उत्पादकों और उपभोक्ताओं के बीच संबंध स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है तथा व्यक्ति-संबंधी बाधा को दूर करता है।

व्यापार में संलग्न व्यक्ति 'व्यापारी' या 'बिचौलिया' कहा जाता है। उत्पादकों और उपभोक्ताओं के बीच कई व्यापारी काम करते हैं तथा व्यक्ति-संबंधी बाधा को दूर करते हैं। व्यापार को हम दो स्थूल वर्गों में विभाजित कर सकते हैं : 1) आंतरिक व बाहरी व्यापार।

1) **आंतरिक व्यापार (Internal Trade) :** जब किसी देश की सीमाओं के अंदर ही व्यापार होता है तो इसे आंतरिक व्यापार कहा जाता है। इसका अर्थ यह है कि क्रय और विक्रय दोनों देश की सीमाओं के अंदर ही होने चाहिए। इसके लिए भुगतान प्रायः राष्ट्रीय मुद्रा में ही किया जाता है। इस आंतरिक व्यापार को अंतर्देशीय व्यापार, राष्ट्रीय मुद्रा में ही किया जाता है। इसे आंतरिक व्यापार अंतर्देशीय व्यापार, राष्ट्रीय व्यापार या देशीय व्यापार भी कहा जाता है।

कार्य की मात्रा के आधार पर हम आंतरिक व्यापार को (क) थोक व्यापार और (ख) फुटकर व्यापार में वर्गीकृत कर सकते हैं।

क) थोक व्यापार (Wholesale Trade) : अपेक्षाकृत बड़ी मात्रा में वस्तुओं का क्रय और विक्रय को थोक व्यापार कहते हैं। थोक व्यापार में संलग्न व्यक्ति को थोक व्यापारी कहते हैं।

ख) फुटकर व्यापार (Retail Trade) : अपेक्षाकृत छोटी मात्रा में वस्तुओं के क्रय और विक्रय को फुटकर व्यापार कहते हैं। फुटकर व्यापार में संलग्न व्यक्ति फुटकर व्यापारी कहलाता है।

आइये, अब हम विस्तार से विवेचन करें कि ये थोक व्यापारी और फुटकर व्यापारी किस प्रकार कार्य करते हैं तथा व्यक्ति की बाधाओं को कैसे दूर करते हैं। थोक व्यापारी निर्माताओं से बड़ी मात्रा में वस्तुएं खरीदता है और फुटकर व्यापारियों को अपेक्षाकृत कम मात्रा में बेचता है। इस प्रकार थोक व्यापारी उत्पादकों और फुटकर व्यापारियों के बीच कड़ी का काम करते हैं। फुटकर व्यापारी थोक व्यापारियों से वस्तुएँ खरीदते हैं, और उन्हें उपभोक्ताओं को और भी छोटी मात्रा में बेचते हैं। इस प्रकार फुटकर व्यापारी एक तरफ थोक व्यापारियों और दूसरी तरफ उपभोक्ताओं के बीच संबंध स्थापित करते हैं। इसी प्रकार थोक व्यापारी और फुटकर व्यापारी उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं के बीच संबंध स्थापित करते हैं तथा व्यक्ति की बाधाओं को दूर करते हैं। लेकिन कभी-कभी उत्पादक केवल थोक व्यापारियों की या केवल फुटकर व्यापारियों की सेवाओं का ही उपयोग करते हैं या फिर उपभोक्ताओं से सीधे ही संपर्क स्थापित करते हैं। उत्पादक और उपभोक्ता के बीच कार्य करने वाले व्यापारियों/बिचौलियों की संपूर्ण श्रृंखला को ''वितरण का माध्यम'' कहते हैं।

2) **बाहरी व्यापार (External Trade) :** इसे विदेश व्यापार (Foreign Trade) या अंतर्राष्ट्रीय व्यापार (International Trade) भी कहा जाता है। जब किसी देश की सीमा से बाहर व्यापार होता है तो उसे बाहरी व्यापार कहते हैं। दूसरे शब्दों में बाहरी व्यापार से अभिप्राय राष्ट्रों के बीच के व्यापार से होता है। यह व्यापार एक वस्तु के दूसरी वस्तु से अथवा मुद्रा से विनिमय के रूप में होता है।

विदेशी व्यापार को हम तीन वर्गों में बाँट सकते हैं :

(क) आयात व्यापार (ख) निर्यात व्यापार (ग) पुनर्निर्यात व्यापार।

आयात व्यापार (Import Trade) : जब एक देश दूसरे देश से वस्तुएं खरीदता है तो खरीदने वाले देश के लिए वह आयात व्यापार कहलाता है। उदाहरण के लिए, भारत अमेरिका से मशीनरी खरीदता है तो यह भारत के लिए आयात व्यापार होगा।

निर्यात व्यापार (Export Trade) : जब कोई देश दूसरे देश को वस्तुएं बेचता है तो बेचने वाले देश के लिए वह निर्यात व्यापार कहलाता है। उदाहरण के लिए, भारत रूस को चमड़े की वस्तुएं तथा अमेरिका को चाय बेचता है। भारत के लिए वस्तुओं की इस प्रकार की बिक्री को निर्यात व्यापार कहा जाएगा।

पुनर्निर्यात व्यापार (Re-export Trade) : इसे ''आयातित माल का निर्यात व्यापार'' (Entrepot Trade) भी कहा जाता है। जब किसी एक देश से वस्तुओं का आयात किया जाता है तथा किसी अन्य देश को उन्हीं वस्तुओं का निर्यात किया जाता है तो ऐसे व्यापार का पुनर्निर्यात व्यापार कहते हैं। पुनर्निर्यात उन देशों द्वारा किया जाता है जिनके पास ऐसे बन्दरगाह होते हैं और जो ऐसे स्थानों पर स्थित हैं जहाँ से वे पड़ोसी देशों के लिए वितरण केन्द्र का कार्य

कर सकते हैं। ऐसे देश बड़ी मात्रा में वस्तुओं का आयात करते हैं तथा फिर पड़ोसी देशों को उन्हीं वस्तुओं का पुनर्निर्यात कर देते हैं।

1.5.2 व्यापार में सहायक कार्य (Aids to Trade)

वे कार्य जो व्यापार को सुविधाजनक बनाते हैं, 'व्यापार में सहायक कार्य' कहलाते हैं। इस प्रकार वे सभी मानवीय कार्यकलाप जो बाधाओं को दूर करते हैं और वस्तुओं को उत्पादकों से उपभोक्ताओं तक पहुँचाने में सहायता करते हैं ''व्यापार में सहायक कार्य'' के अंतर्गत आते हैं। ऐसे कार्यों को 'व्यापार के सहयोगी कार्य' भी कहा जाता है। व्यापार में सहायक कार्यों के अंतर्गत आने वाले कार्यों के संपूर्ण क्षेत्र को पाँच वर्गों में विभाजित किया जा सकता हैं :

(1) परिवहन (2) भंडारण (3) बीमा (4) विज्ञापन तथा (5) बैंकिंग।

1) **परिवहन (Transportation) :** साधारणतया सभी वस्तुओं का उपभोग उसी स्थान पर नहीं होता जिस स्थान पर उनका उत्पादन होता है। इसलिए वस्तुओं को उनके उत्पादन स्थान से उस स्थान पर पहुँचाना होता है जहाँ उनकी माँग है। वस्तुओं को इस प्रकार एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने से संबंधित कार्य को परिवहन कहते हैं। इस प्रकार परिवहन स्थान संबंधी बाधा को दूर करता है और वस्तुओं में स्थानमूलक उपयोगिता का सृजन करता है। परिवहन तीन प्रकार का होता है।

   अ) भूमि परिवहन - सड़क, रेलमार्ग

   ब) हवाई परिवहन - हवाई जहाज

   स) जल परिवहन - नाव जहाज

2) **भंडारण (Warehousing)** : उत्पादन के तुरंत बाद ही वस्तुओं का उपभोग नहीं कर लिया जाता। साधारणतया उसके उत्पादन और उपयोग में कुछ समय का अन्तराल होता है इसी को समय संबंधी बाधा कहते हैं। इसीलिए वस्तुओं के उत्पादन के पश्चात् जब तक उनका उपभोग नहीं किया जाता तब तक उन्हें सुरक्षित रखा जाना चाहिए। विशेष रूप से शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं जैसे दूध, माँस, सब्जी, फल आदि को बहुत सावधानीपूर्वक सुरक्षित रखा जाना चाहिए। अन्यथा वे खराब हो जाती हैं और बेकार हो जाती है। इसी कारण भंडारण को व्यापार का एक अन्य सहायक कार्य माना जाता है भंडारण से आशय वस्तुओं को सुरक्षित रखने से है ताकि जब कभी भी उपभोक्ताओं को इनकी आवश्यकता हो उन्हें तुरंत उपलब्ध कराया जा सके। इस प्रकार भंडारण समय संबंधी बाधा को दूर करता है और वस्तुओं में कालमूलक उपयोगिता का सृजन करता है।

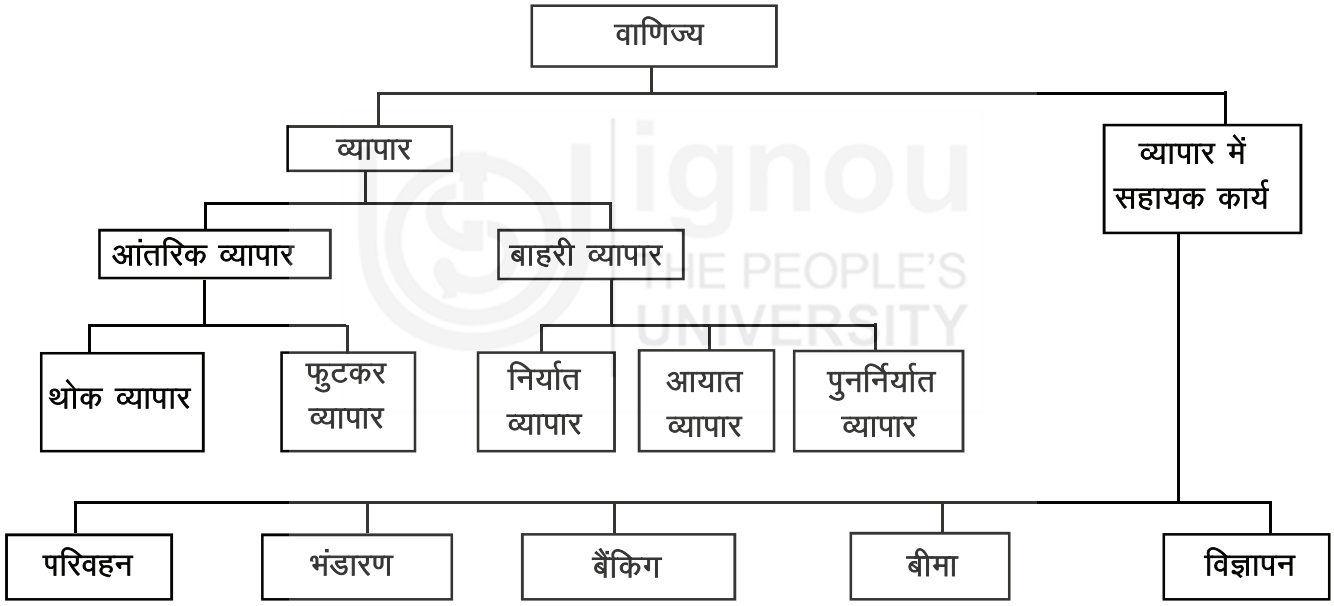
3) **बीमा (Insurance) :** उत्पादन-प्रक्रिया में अथवा रास्ते में दुर्घटना के कारण या फिर भंडार गृह में चोरी हो जाने या आग लग जाने के कारण वस्तुएं नष्ट हो सकती हैं। व्यवसायी इन जोखिमों से अपने आपको सुरक्षित करना चाहेगा। इस संबंध में बीमा कंपनियाँ उसकी सहायता करती हैं। ऐसी जोखिम से हुई क्षति की पूर्ति करने का दायित्व ये अपने ऊपर लेती हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए व्यवसाय को एक बीमा पॉलिसी लेनी पड़ती है। और नियमित रूप से एक निश्चित रकम अदा करनी पड़ती हैं, जिसे प्रीमियम कहा जाता है। इस प्रकार बीमा जोखिम संबंधी बाधा को दूर करता है।

4) **विज्ञापन (Advertising) :** वस्तु का विनिमय तभी संभव है जब उपभोक्ताओं को उस वस्तु के अस्तित्व के बारे में ज्ञान हो। इसको ज्ञान संबंधी बाधा कहा जाता है। इस

बाधा को विज्ञापन द्वारा दूर किया जाता है। विज्ञापन के माध्यम से उत्पादक अपनी वस्तुओं के बारे में पूर्व जानकारी संभावित उपभोक्ताओं तक पहुँचाते हैं और उनमें उस वस्तु को खरीदने की तीव्र इच्छा पैदा करते हैं। इस प्रकार विज्ञापन उपभोक्ताओं तक वस्तुओं के बारे में पूर्ण जानकारी पहुँचाने में सहायता करता है। विज्ञापन कई माध्यमों से किया जा सकता है जैसे टेलीविजन, रेडियो, समाचार पत्र, पत्रिकाएँ, होर्डिंग, दीवारों पर लगे पोस्टर, आदि।

5) **बैंकिग (Banking) :** बैंकिंग वित्त और ऋण संबंधी बाधाओं को दूर करके वस्तुओं को उपभोक्ताओं तक पहुँचाने में सहायता करती है। आज के युग में हम बैंकों के बिना व्यवसाय के बारे में सोच ही नहीं सकते। व्यवसाय शुरू करने या उसे सुचारू रूप से चलाने के लिए धन की आवश्यकता होती है। बैंक धन संबंधी आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। बैंक एक ऐसा संगठन है जो जन साधारण का धन जमा के रूप में स्वीकार करता है। जिसे आवश्यकता पड़ने पर माँग द्वारा अथवा अन्य किसी प्रकार से निकलवाया जा सकता है तथा जिन लोागों को धन की आवश्यकता हो उन्हें धन उधार देता है। बैंक व्यवसाय कार्य के लिए कई अन्य सेवाएं भी प्रदान करते हैं।

वाणिज्य के वर्गीकरण और उप-वर्गीकरण के लिए चित्र 1.3 देखिए।



चित्र 1.3 : वाणिज्य में वर्गीकरण

बोध प्रश्न 3

1) वाणिज्य तथा उद्योग में क्या अंतर है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) आंतरिक व्यापार और बाहरी व्यापार में क्या भेद हैं?

.....

.....

.....

.....

3) व्यापार वाणिज्य से किस प्रकार भिन्न है?

.....

.....

.....

.....

.....

4) नीचे व्यापार बाधाओं की एक सूची दी गई है। इन बाधाओं को दूर करने वाले व्यावसायिक कार्यकलाप के नाम बताइए।

	बाधाएँ	व्यावसायिक कार्यकलाप का नाम
i)	दूरी संबंधी बाधा	.....
ii)	समय संबंधी बाधा	.....
iii)	जोखिम संबंधी बाधा	.....
iv)	वित्त संबंधी बाधा	.....
v)	ज्ञान संबंधी बाधा	.....
vi)	व्यक्ति संबंधी बाधा	.....

5) बताएं कि निम्नलिखित कथन **सही है** अथवा **गलत**।

i) व्यापार का संबध वस्तुओं के क्रय और विक्रय से होता है। ( )

ii) कम मात्रा में खरीदने और बेचने वाला व्यक्ति थोक व्यापारी कहलाता है। ( )

iii) जब किसी दूसरे देश की वस्तुएं बेची जाती हैं तब उसे निर्यात व्यापाार कहते हैं। ( )

iv) क्रय तथा विक्रय को सहज बनाने वाले कार्य व्यापार में सहायक कार्यों के अंतर्गत आते हैं। ( )

v) आयात व्यापार से आशय किसी देश में वस्तुएं खरीदकर उन्हें दूसरे देश में बेचने से होता है। ( )

vi) आंतरिक व्यापार से आशय राष्ट्रीय सीमाओं के भीतर वस्तुओं के क्रय और विक्रय से होता है। ( )

vii) फुटकर व्यापारी थोक व्यापारी और उपभोक्ता के बीच संबंध स्थापित करता है ( )

viii) बाहरी व्यापार गृह-व्यापार भी कहलाता है। ( )

1.6 व्यापार, उद्योग और वाणिज्य के बीच सम्बन्ध

व्यापार में लाभ अर्जित करने के इरादे से माल और सेवाओं के संतोषजनक उत्पादन या आदान-प्रदान के बारे में आपने सीखा है। इसके अलावा आपने यह भी सीखा है कि व्यावसायिक कार्यकलापों का उत्पादन पहलू उद्योग के अंतर्गत आता है। जबकि विनिमय पहलू वाणिज्य के अंतर्गत आता हैं। वाणिज्य में दो मुख्य पहलू हैं – व्यापार (खरीद और बिक्री गतिविधियां) तथा व्यापार में सहायक कार्य (गतिविधियां जो माल के आसान प्रवाह की सुविधा देती हैं)। व्यावसायिक कार्यकलाप की ये सभी शाखाएं एवं उप-शाखाएं एक दूसरे से निकटता से संबंधित हैं और उनमें से कोई भी अलगाव में कार्य नहीं कर सकती है।

उद्योग बिक्री और वितरण के लिए तैयार सामान और सेवाएं उपलब्ध कराता है लेकिन वाणिज्य अधिक विशेष रूप से व्यापार उद्योग को उत्पादन के लिए आवश्यक सामग्री की खरीद के माध्यम से कार्य करने में सक्षम बनाता है। उत्पादन के चरण में मिलने वाली सहायता तैयार उत्पादों की बिक्री के दौरान भी जारी रहती है। वाणिज्य माल और सेवाओं के उत्पादक और इन वस्तुओं और सेवाओं के उपभोक्ताओं के बीच का संबंध है। वाणिज्य इस प्रकार उद्योग की रीढ़ की हड्डी के रूप में कार्य करता है जबकि उद्योग वाणिज्य के लिए आधार प्रदान करता है। यदि आपको याद होगा तो हमने यह भी उल्लेख किया है कि उत्पादक से उपभोक्ता तक माल और सेवाओं का एक स्वच्छ और निर्बाध प्रवाह कई बाधाओं और रुकावटों से घिरा हुआ है और वाणिज्य का एक प्रमुख पहलू 'सहयोग' नामक है जो विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से इन बाधाओं और रुकावटों को समाप्त करता है। व्यापार के लिए सहायता के अंतर्गत परिवहन, गोदाम, बीमा, विज्ञापन इत्यादि भी शामिल रहते हैं। इस प्रकार से सभी संपूर्ण व्यापार प्रणाली का हिस्सा हैं तथा एक-दूसरे के पूरक हैं जो एक दूसरे को माल और सेवाओं के वितरण के लिए सहयोग करते हैं।

1.7 संगठन

अभी तक आपने व्यावसायिक कार्यकलाप के बारे में तथा उनके विभिन्न प्रकार जैसे उद्योग, व्यापार, परिवहन, बैंकिंग आदि के बीच में संबंध क्या है यह जानकारी प्राप्त की है। चाहे आप किसी भी व्यावसायिक कार्य को करें आपको पूँजी, मशीनरी, कच्चे माल, श्रम तकनीशियनों आदि विभिन्न साधन जुटाने होंगे। इन साधनों की मात्र विद्यमानता या उपलब्धता ही पर्याप्त नहीं होती। उद्देश्य की पूर्ति के लिए इन साधनों को सुचारू रूप से काम में लाना होता है।

उदाहरण के लिए, वस्त्र-उत्पादन को ही लीजिए। सर्वप्रथम आप कुछ भूमि प्राप्त करते हैं, फिर भवन का निर्माण करवाते हैं, मशीनरी का क्रय करते हैं तथा भवन में उसकी स्थापना करवाते हैं। मशीनों पर काम करने के लिए श्रमिकों और तकनीशियनों को नियुक्त करते हैं, कच्चे माल खरीदते हैं (जैसे – रूई, रंग आदि) कारखाने में कच्चे माल को संसाधित करते हैं तथा इस प्रकार वस्त्र का उत्पादन करते हैं। वस्त्र का उत्पादन हो जाने के बाद उसे थोक व्यापारियों अथवा फुटकर व्यापारियों के माध्यम से उपभोक्ताओं को बेचा जाता है। इस प्रकार वस्त्र का उत्पादन करने के लिए आपको कारखाना, रूई, रंग, श्रमिक, थोक, व्यापारी, फुटकर व्यापारी आदि साधनों को एकत्रित करना पड़ता है। लेकिन इन साधनों के विद्यमान होने मात्र से ही उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो जाती। हमें इन सभी को व्यवस्थित ढंग से एक साथ क्रियान्वित करना हो और उनके कार्यकलाप में समन्वय करना होता है। केवल तभी वस्त्र का उत्पादन करना, उपभोक्ताओं में इसे वितरित करना तथा लाभ कमाना संभव होता है। किसी भी व्यावसायिक कार्यकलाप के लिए यही सब करना आवश्यक होता है।

व्यावयायिक कार्य तभी वास्तविकता का रूप धारण कर सकता है जब आवश्यक साधनों को जुटाने के लिए, व्यवस्थित ढंग से उन्हें कार्यान्वित करने के लिए तथा उनकी क्रियाओं में उचित समन्वय करने के लिए प्रयत्न किए जाते हैं। यही व्यवसाय संगठन कहलाता है।

जे. डब्लू. शुल्ज के विचार में, ''संगठन का आशय है आवश्यक प्राणियों, सामग्री, औजार, उपस्कर, कार्य-स्थल, उपकरण तथा वित्त का एकत्रीकरण जिनका आपस में एक व्यवस्थित ढंग से प्रभावी सह-संबंध स्थापित किया जाता है ताकि वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति हो सके।

औलिवर शेल्डन ने इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है : ''संगठन कार्य के सम्मिश्रण की उस प्रक्रिया को कहते हैं जो व्यक्तियों तथा व्यक्तियों के समूह द्वारा उसके निष्पादन के लिए आवश्यक सुविधाओं की सहायता से पूरा किया जाता है ताकि उपलब्ध प्रयासों के कुशल व्यवस्थित, सुनिश्चित तथा समन्वित प्रयोग के लिए सर्वश्रेष्ठ स्रोत उपलब्ध हो सकें।''

एफ. जे. राइट के विचार से, '' संगठन किसी आर्थिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए साधनों का ऐसा सम्मिश्रण अथवा व्यवस्था है जिसके द्वारा या तो उपलब्ध साधनों की सहायता से अधिकतम फल अथवा लाभ प्राप्त किया जा सके अथवा किसी निश्चित उद्देश्य को प्राप्त किया जा सके जिसमें साधनों का कम से कम प्रयोग किया गया हो।''

इस प्रकार व्यावसायिक संगठन का अर्थ है – लाभ कमाने के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए व्यवसाय के विभिन्न घटकों जैसे श्रम, कच्चा माल, मशीन, पूँजी, शक्ति आदि को एकत्रित करना, व्यवस्थित ढंग से उन्हें कार्य में लगाना तथा प्रभावकारी ढंग से उनके कार्यकलाप में समन्वय स्थापित करना और उन्हें नियंत्रित करना।

व्यावसायिक संगठन के रूप : व्यवसाय का स्वामित्व एवं प्रबंधन किसी एक व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह के हाथ में हो सकता है जो परस्पर मिलकर एक साझेदारी फर्म या एक संयुक्त स्टाक कंपनी अथवा एक सहकारी समिति स्थापित करते हैं। इस प्रकार स्वामित्व एवं प्रबंधन के आधार पर हम व्यावसायिक संगठनों को चार वर्गों में विभाजित कर सकते हैं:

1) एकल स्वामित्व संगठन (Sole Proprietorship)
2) साझेदारी फर्म (Partnership Firm)
3) कंपनी (Company)
4) सहकारी समिति (Co-operative Society)

प्रथम दो वर्गों को (एकल स्वामित्व संगठन तथा साझेदारी फर्म) संगठन का गैर निगमित रूप कहा जाता है। शेष दो वर्गों को (कंपनी तथा सहकारी समिति) संगठन का निगमित रूप कहा जा सकता है। संगठन के इन स्वरूपों का विस्तृत अध्ययन आप इकाई 2 और 3 में करेंगे।

1.8 उद्यमकर्त्ता (Entrepreneur)

आप जानते हैं कि किसी भी व्यवसाय को चलाने का प्रमुख उद्देश्य लाभ कमाना ही होता है। आप यह भी जानते हैं कि इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए व्यवसाय की स्थापना की जाती है, जिसके लिए विभिन्न संसाधनों को एकत्रित करना, उनमें समन्वय स्थापित करना तथा सभी कार्यों को नियंत्रित करना आवश्यक होता है। ये सभी कार्य कोई ऐसा व्यक्ति ही कर सकता है जिसने एक विशेष प्रकार का व्यवयाय करने का विचार किया हो, साधन जुटाये हों तथा संगठन का मूर्तरूप देने का कार्य किया हो। ऐसे व्यक्ति को उद्यमकर्त्ता कहा

जाता है। यह वह व्यक्ति होता है जो व्यवसाय की जोखिम भी उठाता है। आप जानते हैं कि यद्यपि प्रत्येक व्यवसाय लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से ही प्रारंभ किया जाता है लेकिन हानि की संभावना से भी इंकार नहीं किया जा सकता। इस प्रकार उद्यमकर्त्ता वह व्यक्ति है जो व्यवसाय प्रारंभ करने का विचार करता है, संगठन को मूर्तरूप प्रदान करता है, व्यावसायिक कार्यकलाप को चलाता है तथा हानि की जोखिम को वहन करने के लिए तैयार रहता है।

1.8.1 एक उद्यमकर्त्ता के लक्षण

यदि आप व्यवसाय का इतिहास पढ़ें तो आपको बहुत से व्यक्तियों के नाम ज्ञात होंगे जो उद्यमी कहलाते हैं। संयुक्त राज्य अमरीका के रॉकफेलर और हेनरी फोर्ड, जर्मनी के कार्ल बैंज तथा गॉटफ्राइट डेमलर तथा जापान के सोइचीरों होंडा ऐसे उद्यमियों के अत्यंत प्रसिद्ध नाम हैं जिन्होंने औद्योगिक प्रतिष्ठानों को स्थापित करके अपार धन अर्जित किया। हमारे देश में भी जे.एन.टाटा, जी.डी. बिरला, किर्लोस्कर व अन्य व्यक्तियों ने सफलतापूर्वक विनिर्माण उद्योग स्थापित किए हैं। उद्यमियों में वैयक्तिक गुण एक जैसे थे, इसकी जानकारी प्राप्त कर लेना लाभदायक होगा। इन उद्यमियों के चरित्र में कुछ निम्नलिखित तत्व समान रूप से पाए गये हैं, जिनकी आमतौर पर प्रधान माना जाता है।

1) **स्वतंत्रता :** बहुत से सफल उद्यमियों ने अपने आपको लीक में नहीं बांधा। वे इनसे हटकर चले। वास्तव में, उद्यमी तब हताश हो जाते हैं जब उनको किसी अन्य व्यक्ति के आदेशों का पालन करना पड़ता है। वे स्वयं ही मालिक बनना पंसद करते हैं तथा नियंत्रण भी करना चाहते हैं। किसी अन्य व्यक्ति के निदेशन में वे कार्य करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं।

2) **कठिन परिश्रम :** कार्य करने की इच्छा तथा कठिन परिश्रम करना उद्यमी की उत्कृष्ट विशेषता मानी गई है। आप दावे से कह सकते हैं कि किसी भी सफल व्यवसायी ने कठिन परिश्रम किया है, घण्टों पसीना बहाया है, मनोवेग से दबा रहा है तथा अध्यवसाय से कार्य किया है। बहुत संभव है कि प्रारंभ में व्यवसाय को समय-समय पर असफलता का सामना करना पड़ा हो परन्तु उद्यमी ने उसको समाप्त नहीं होने दिया। एक सफल उद्यमी ने अपने प्रारम्भिक अनुभव की कहानी कहते हुए बताया कि उसने लगातार कार्य किया, चौबीस घंटों में बाहर घंटों से भी अधिक और सप्ताह के पूरे सात दिन। आप कह सकते हैं कि उसने अपना समस्त जीवन इसी प्रकार व्यतीत किया।

3) **लक्ष्य की प्राप्ति की इच्छा :** उद्यमियों की अपनी समस्याओं का हल खोजने और व्यावसायिक उपक्रम को सफल बनाने की तीव्र इच्छा होती है। जिसके अन्त में उन्हें पर्याप्त मुनाफे मिलते हैं। मुनाफे को वे अपनी सफलता तथा कार्य-निष्पादन का मानदंड मानकर चलते हैं। केवल रुपया कमाना ही उनका ध्येय नहीं होता।

4) **दूरदर्शी तथा गतिशील दृष्टिकोण :** मूलतः इन व्यक्तियों को व्यावसायिक पर्यावरण अर्थात् बाजार, उपभोक्ताओं के दृष्टिकोण, तकनीकी विकास आदि का व्यापक ज्ञान होता है। फिर, इन व्यक्तियों को व्यावसायिक अनिश्चितताओं व जोखिम की भविष्यवाणी करने में भी निपुणता प्राप्त होती है। अतः वे शीघ्र व श्रेष्ठ निर्णय लेने में समर्थ होते हैं।

5) **खुला मस्तिष्क :** ये व्यक्ति व्यवसाय के पर्यावरण में होने वाले परिवर्तन की भविष्यवाणी करने में निपुण होते हैं परन्तु वे परिवर्तन को रोकने का कभी प्रयास नहीं करते क्योंकि

उन्हें मालूम होता है कि वे अपनाने वाले परिवर्तन को रोक नहीं पायेंगे। अतः वे अपना मस्तिष्क खुला करने के आदि से हो जाते हैं। यद्यपि उपभोक्ताओं की रुचि में परिवर्तन होने के कारण कभी-कभी इन लोगों को करोड़ों रुपये की हानि उठानी पड़ जाती है। जिससे उन्हें अपनी प्रौद्योगिकी को बदलना होता है।

6) **आशावादी दृष्टिकोण :** प्रायः वे वर्तमान समस्याओं को अस्थायी रूप देते हैं तथा यह मानकर चलते हैं कि कुछ समय के पश्चात् परिस्थितियाँ उनके अनुकूल हो जाएंगी। वे सदैव अपने लक्ष्यों को श्रेष्ठतम विधि से प्राप्त करने के इच्छुक रहते हैं ताकि परिणाम उत्कृष्ट निकले और उन्हें गर्व महसूस करने का अवसर प्राप्त हो।

7) **कारोबारी संबंध :** व्यवसाय की सफलता मुख्यतः उसमें कार्य करने वाले श्रमिकों पर निर्भर करती है। उसके बाद महत्वपूर्ण होता है अन्य व्यावसायिक उपक्रमों के साथ उपक्रमी का संबंध। बहुत से उद्यमियों के अन्य व्यवसायियों के साथ मधुर संबंध रहे हैं। इसके फलस्वरूप बाजार में उनकी साख जमती है।

8) **अच्छे संगठनकर्त्ता :** व्यवसाय का प्रारम्भ के लिए आवश्यक विभिन्न प्रकार के साधनों का सम्मिश्रण करना तथा उनसे श्रेष्ठतम लाभ प्राप्त करना वे बखूबी जानते हैं। वे व्यवसाय के भविष्य के बारे में लोगों को विश्वास उत्पन्न कर सकते हैं, उनका सहयोग प्राप्त कर सकते हैं, पूँजी जुटा सकते हैं, मशीनरी खरीद सकते हैं, सामग्री का प्रबंध कर सकते हैं, उपयुक्त कर्मचारियों का चयन कर सकते हैं तथा व्यवसाय से संबंधित विविध क्रियाओं का समन्वयन कर सकते हैं।

9) **नवाचार के प्रति अभिरुचि :** सफल उद्यमियों में से अनेकों ने नवाचार के प्रति अभिरुचि दिखाई है। वे अपनी आय का एक भाग अनुसंधान और नवाचार कार्यों पर लगाते हैं, ताकि वे उपभोक्ताओं की मांग पूरा करने के लिए उपयुक्त माल प्रदान कर सकें। बिड़ला टाटा, किर्लोस्कर आदि हमारे देश के कुछ उद्योगपतियों ने अपने-अपने शोध केन्द्र भी स्थापित किए है।

1.9 सारांश

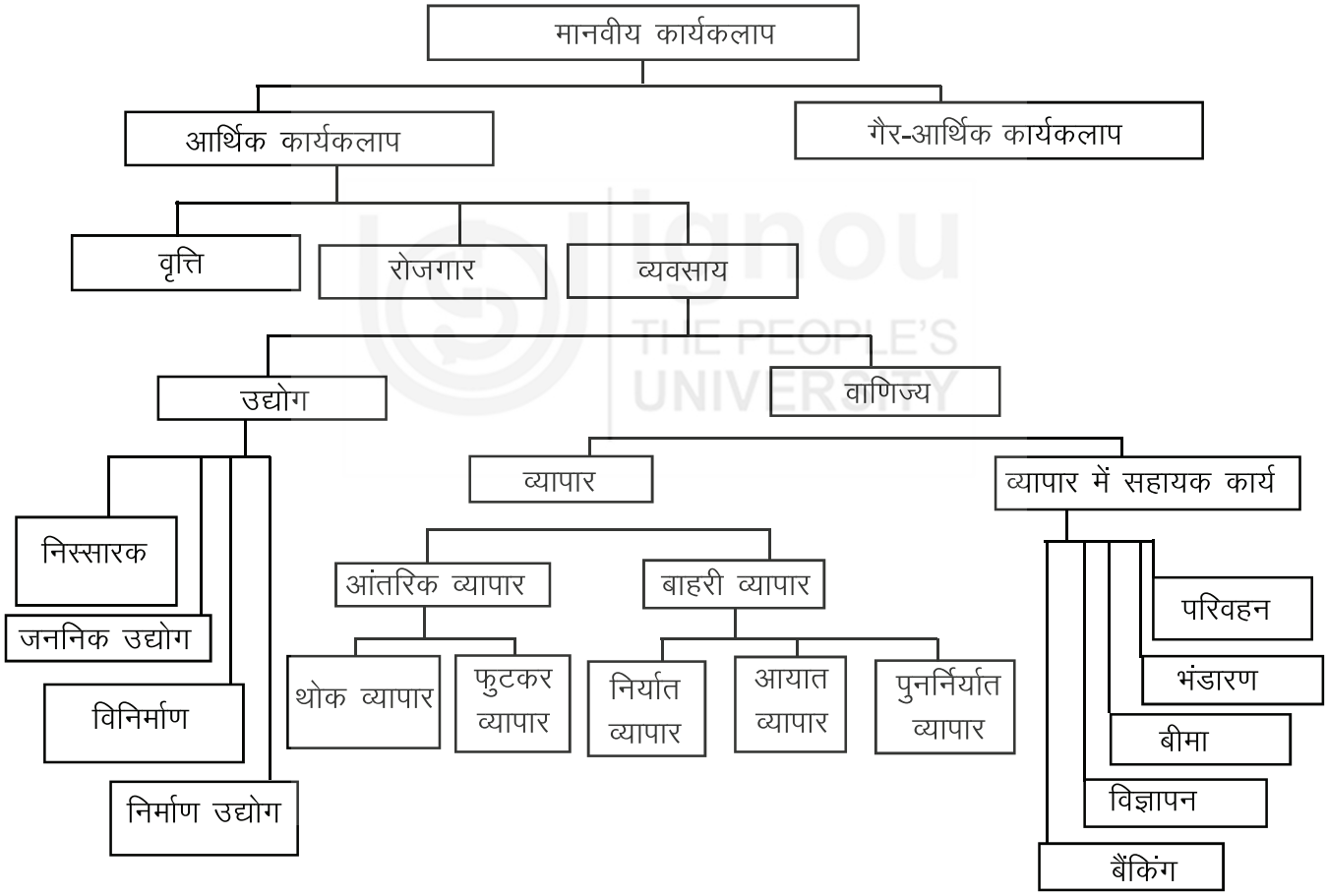
मानवीय कार्यकलाप के संपूर्ण क्षेत्र को (1) आर्थिक कार्यकलाप तथा (2) गैर-आर्थिक कार्यकलाप में वर्गीकृत किया जा सकता है। आर्थिक कार्यकलाप को (1) व्यवसाय (2) वृत्ति, और (3) रोजगार में विभाजित किया जाता है। व्यवसाय का संबंध वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन तथा/अथवा विनिमय से है जिसका प्रमुख उद्देश्य लाभ अर्जित करना होता है। वे कार्य जिनका संबंध एक विशिष्ट प्रकार की व्यक्तिगत सेवाएँ प्रदान करने से होता है वृत्ति के अंतर्गत आते हैं। रोजगार का आशय नियोक्ता द्वारा किसी समझौते या सेवा-नियमों के अधीन किसी व्यक्ति को सौंपे गए कार्य से होता है।

व्यावसायिक कार्यकलाप के मुख्य लक्षण इस प्रकार हैं – (1) वस्तुओं और सेवाओं का कारोबार, (2) उत्पादन तथा/अथवा विनिमय, (3) लेन-देन में नियमितता, (4) लाभार्जन प्रमुख प्रयोजन, (5) जोखिम का तत्व, एवं (6) उद्यम। लाभ अर्जित करने का अतिरिक्त व्यवसाय के कुछ आर्थिक, सामाजिक और मानवीय उद्देश्य भी होते हैं।

व्यावसायिक कार्यकलाप के दो वर्गों (1) उद्योग तथा (2) वाणिज्य में विभाजित किया जा सकता है। औद्योगिक कार्यकलाप को 4 वर्गों में बांटा जाता है – (1) निस्सारक उद्योग (2) जननिक उद्योग (3) विनिर्माण उद्योग तथा (4) निर्माण उद्योग।

वाणिज्य को दो वर्गों में बांटा जाता है। (1) व्यापार तथा (2) व्यापार में सहायक कार्य। क्रय और विक्रय से संबंधित कार्य व्यापार के अंतर्गत आते हैं। वे कार्य जो क्रय-विक्रय को सुविधाजनक बनाते हैं तथा वस्तुओं और सेवाओं के निरंतर प्रवाह को कायम रखते हैं, व्यापार में सहायक कार्यों के अंतर्गत आते हैं। ये हैं (1) परिवहन, (2) भंडारण, (3) बैंकिंग (4) बीमा, और (5) विज्ञापन। संगठन व्यावसायिक कल्पना को यथार्थ रूप प्रदान करता है। यह आवश्यक घटकों को एकत्रित करता है, व्यवस्थित ढंग से उन्हें क्रियान्वित करता है। तथा लाभ अर्जित करने के उद्देश्य से उनके कार्यकलाप को प्रभावकारी ढंग से समन्वित तथा नियंत्रित करता है। व्यावसायिक संगठन के चार प्रमुख मूल रूप हैं – (1) एकल स्वामित्व संगठन, (2) साझेदारी संठन (3) कंपनी, तथा (4) सहकारी समिति।

सभी प्रकार के व्यवसाय एक विचार के साथ शुरू होते हैं। एक व्यक्ति जो एक विशेष प्रकार के व्यवसाय को करने के लिए किसी विचार को स्वीकार करता है, संसाधनों को जुटाता है तथा संगठन को अस्तित्व में लाता है उसे उद्यमकर्त्ता कहा जाता है। उद्यमकर्त्ताओं के चरित्र में कुछ सामान्य तत्व स्वतंत्रता, कड़ी मेहनत, लक्ष्यों को प्राप्त करने की इच्छाशक्ति, खुला दिमाग तथा आशावादी दृष्टिकोण आदि होना चाहिए।



चित्र 1.4 : मानवीय कार्यकलापों का वर्गीकरण

1.10 शब्दावली

विज्ञापन (Advertising) : एक ऐसा कार्य जिसके द्वारा उत्पादित वस्तु की तथा उसकी विशेषताओं की जानकारी लोगों को इस ढंग से दी जाती है जिससे उसकी माँग में वृद्धि हो जाए।

व्यापार में सहायक उर्जा (Aids to Trade) : वे कार्य जो उत्पादकों से उपभोक्ताओं तक वस्तुओं और सेवाओं के निरंतर और निर्विघ्न प्रवाह को सुविधाजनक बनाते हैं।

बैंकिंग (Banking) : एक ऐसा कार्य जो जनसाधारण के धन जमा कराने के लिए प्रोत्साहित करता है और जिनको ऐसे धन की आवश्यकता होती है उनको ऋण प्रदान करता है।

व्यवसाय (Business) : लाभ अर्जित करने के लिए प्रमुख उद्देश्य से चलाया जाने वाला कार्य जो आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाली वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन तथा/अथवा विनिमय से संबंधित हो।

व्यावसायिक संगठन (Business Organisation) : व्यवसाय के उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु श्रम, शक्ति, कच्चे माल, मशीन, पूँजी, शक्ति आदि को व्यवसाय के विभिन्न घटकों को एकत्रित करना, व्यवस्थित ढंग से उन्हें काम में लाना तथा उनके कार्यकलाप को समन्वित और नियंत्रित करना।

वाणिज्य (Commerce) : वे कार्यकलाप जिनका संबंध वस्तुओं और सेवाओं के क्रय तथा विक्रय से तथा क्रेताओं और विक्रेताओं के बीच वस्तुओं और सेवाओं के निरंतर और निर्विघ्न प्रवाह को कायम रखने से होता है।

निर्माण उद्योग (Construction Industry) : ऐसे उद्योग जो भवन, पुल सड़क बाँध, नहरे, रेल पटरी आदि के निर्माण में संलग्न हों।

आर्थिक कार्यकलाप (Economic Activities) : मानव द्वारा धन या जीविका के उपार्जन के लिए किए जाने वाले कार्य।

रोजगार (Employment) : किसी समझौते या सेवा-नियमों के अधीन किसी नियोक्ता के साथ काम करने की क्रिया।

उद्यमकर्त्ता (Enterpreneur) : ऐसा व्यक्ति जिसने कोई व्यवसाय प्रारंभ करने की कल्पना की हो, संगठन के मूर्तरूप प्रदान किया हो व्यवसाय कार्य चल रहा हो तथा हानि की जोखिम को उठाने के लिए तैयार हो।

निर्यात व्यापार (Export Trade) : किसी दूसरे देश को वस्तुओं का विक्रय करना।

बाहरी व्यापार (External Trade) : देश की सीमाओं के बाहर वस्तुओं और सेवाओं का क्रय तथा विक्रय।

निस्सारक उद्योग (Extractive Industry) : खनिज पदार्थ, पशु पेड़-पौधे आदि जैसे प्राकृतिक संसाधनों की पृथ्वी की सतह से या सतह के नीचे से या वायु से अथवा जल से खोज तथा निस्सार में संलग्न उद्योग।

जननिक उद्योग (Genetic Industry) : पौधों और पशुओं के प्रजनन में तथा उनकी प्रजाति में वृद्धि करने में संलग्न उद्योग जिसका उद्देश्य उनके विक्रय से लाभ अर्जित करना होता है।

आयात व्यापार (Import Trade) : किसी दूसरे देश से वस्तुओं का क्रय।

उद्योग (Industry) : उपलब्ध भौतिक साधनों के उपयोग से वस्तुओं और सेवाओं से उत्पादन में संबंधित कार्य।

बीमा (Insurance) : बीमा कंपनी को एक निश्चित प्रीमियम देकर आग, दुर्घटना आदि से होने वाली क्षति की जोखिम से अपने आपको सुरक्षित रखना।

आंतरिक व्यापार (Internal Trade) : किसी देश की सीमाओं के भीतर वस्तुओं और सेवाओं का क्रय तथा विक्रय।

विनिर्माण उद्योग (Manufacturing Industry) : ऐसा उद्योग जिसका संबंध कच्चे माल और अर्ध-निर्मित माल को निर्मित माल का रूप देने से हो।

गैर-आर्थिक कार्यकलाप (Non-Economic Activities) : ऐसे कार्य जिनका संपादन मनुष्यों द्वारा स्नेह, प्रेम, सामाजिक दायित्व, धार्मिक देशभक्ति, शारीरिक आवश्यकता आदि के कारण किया जाता है, धन अर्जित करने के लिए नहीं।

वृत्ति (Profession) : ऐसे कार्य जिनका संबंध वृत्तिक ज्ञान, शिक्षण एवं प्रशिक्षण पर आधारित विशेष प्रकार की व्यक्तिगत सेवाएं प्रदान करने से हो।

पुनर्निर्यात व्यापार (Re-export Trade) : किसी एक देश से वस्तुओं का आयात करना तथा उन्हीं वस्तुओं का किसी दूसरे देश को निर्यात करना। इसे Entrepot Trade भी कहते हैं।

फुटकर व्यापार (Retail Trade): थोक व्यापारियों से बड़ी मात्रा में वस्तुएँ खरीदना तथा उन्हीं वस्तुओं को उपभोक्ताओं की छोटी-छोटी मात्रा में बेचना।

व्यापार (Trade) : ऐसे कार्य जिनका संबंध वस्तुओं और सेवाओं के क्रय तथा विक्रय से हो।

परिवहन (Transportation) : वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने से संबंधित कार्य।

भंडारण (Warehousing) : ऐसे कार्य जिनका संबंध वस्तुओं को सुरक्षित रखने से हो ताकि उपभोक्ताओं को जब उनकी आवश्यकता हो तो उन्हें वे वस्तुएं उपलब्ध कराई जा सकें।

थोक व्यापार (Wholesale Trade) : उत्पादकों से बड़ी मात्रा में वस्तुएँ खरीदना तथा फुटकर व्यापारियों को उन्हें छोटी-छोटी मात्रा में बेचना।

1.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

यदुकुल भूषण एवं ओ.पी. अग्रवाल : **व्यावसायिक संगठन के सिद्धांत** (नई दिल्ली : सुल्तान चंद एंड संस, 1988) अध्याय 1 और 3, खंड एक।

बी.पी. सिंह एवं टी.एन छाबड़ा : **व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध का परिचय** (इलाहबाद : किताब महल, 1988) अध्याय 1 और 3 खंड एक।

जी. एल जोशी, जी. एल. शर्मा एल. एस सी. जोशी : **व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध** (दिल्ली: श्री महावीर बुक डिपो, 1988) अध्याय 1 और 3।

राम नारायण गोयल : **आधुनिक व्यवसाय-संगठन एवं प्रबंध** (इलाहाबाद : किताब महल) अध्याय 1, खंड एक।

1.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

5) i) व्यावसाय ii) रोजगार iii) रोजगार iv) वृत्ति

v) व्यवसाय vi) वृत्ति vii) व्यवसाय

6) i) गलत ii) गलत iii) सही iv) गलत

v) गलत vi) सही vii) सही viii) सही

ix) गलत x) सही xi) गलत

बोध प्रश्न 2

2) i) आथिक कार्यकलाप ii) रोजगार iii) व्यवसाय

vi) उद्योग v) जननित iv) विनिर्माण

3) i) निस्सारक ii) निस्सारक iii) विनिर्माण

iv) निर्माण v) विनिर्माण vi) जननिक vii) निर्माण viii) विनिर्माण

बोध प्रश्न 3

4) i) परिवहन ii) भंडारण iii) बीमा iv)बैंकिंग

v) विज्ञापन iv)व्यापार

5) i) सही ii) गलत iii)सही iv) सही v)गलत vi) सही vii) सही viii)गलत

1.13 अभ्यास के लिए प्रश्न

1) व्यवसाय किसे कहते हैं ? उसके लक्षणों और उद्देश्यों को स्पष्ट कीजिए।

2) क्या व्यवसाय वृत्ति और रोजगार से भिन्न होता है? विवेचन कीजिए।

3) उद्योग किसे कहते हैं ? उसके वर्गीकरण की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।

4) वाणिज्य से आप क्या समझते हैं? उपयुक्त उदाहरण देकर वाणिज्य के वर्गीकरण का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

5) ''संगठन'' से आप क्या समझते हैं? व्यावसायिक संगठन के आधारभूत रूप कौन से हैं?

6) उद्यमकर्त्ता से क्या तात्पर्य है? व्यवसाय में उसकी क्या भूमिका है?

टिप्पणी : ये प्रश्न आपको इस इकाई को अधिक अच्छी तरह समझने में सहायक होंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयत्न कीजिए। किन्तु अपने उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

इकाई 2 व्यावसायिक संगठन के रूप-I

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 एकल स्वामित्व संगठन

2.2.1 प्रमुख विशेषताएँ

2.2.2 गुण व सीमाएँ

2.3 साझेदारी संगठन

2.3.1 प्रमुख विशेषताएँ

2.3.2 साझेदारों का वर्गीकरण

2.3.3 साझेदारी विलेख

2.3.4 गुण व सीमाएँ

2.4 संयुक्त हिन्दू परिवार फर्म

2.5 कंपनी संगठन

2.5.1 गुण व सीमाएँ

2.6 सहकारी संगठन

2.6.1 प्रमुख विशेषताएँ

2.6.2 सहकारी समितियों का वर्गीकरण

2.6.3 गुण व सीमाएँ

2.7 सारांश

2.8 शब्दावली

2.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.11 अभ्यास के लिए प्रश्न

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात्, आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

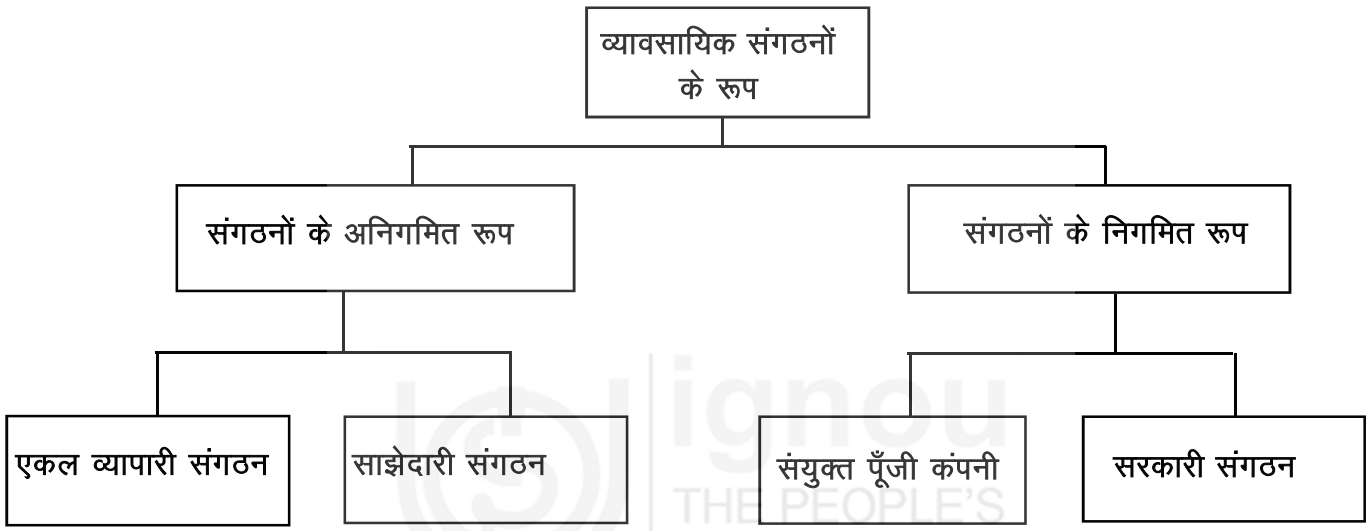
- विभिन्न प्रकार व्यावसायिक संगठनों का वर्णन कर सकें;
- प्रत्येक व्यावसायिक संगठन की विशेषताएँ बता सकें; तथा
- प्रत्येक व्यावसायिक संगठन के गुणों व सीमाओं का वर्णन कर सकें।

2.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने पढ़ा है कि लाभ कमाने की दृष्टि से किया गया कोई भी कार्य व्यवसाय कहलाता है, और ऐसा कार्य औद्योगिक कार्य हो सकता है अथवा व्यापारिक कार्य या बैंकिग, बीमा, परिवहन आदि जैसा सेवा कार्य हो सकता है। आपने यह भी पढ़ा है कि व्यवसाय को शुरू करने के लिए विभिन्न साधनों को एक साथ जुटाना और उन्हें व्यवस्थित ढंग से कार्य पर लगाना व्यावसायिक संगठन कहलाता है। वह व्यक्ति जो व्यवसाय शुरू

करता है, आवश्यक पूँजी जुटाता है तथा जोखिम वहन करता है, व्यवसाय का स्वामी कहलाता है। जब व्यवसाय छोटे पैमाने का होता है तो एक व्यक्ति भी आवश्यक पूँजी जुटा सकता है तथा जोखिम उठा सकता है। परन्तु जब यह बड़े पैमाने पर होता है, तो एक से अधिक व्यक्तियों का सहयोग होना आवश्यक हो सकता है। अस्तु, व्यवसाय का स्वामी एक व्यक्ति भी हो सकता है या व्यक्तियों का समूह भी। जब व्यवसाय का एक ही व्यक्ति स्वामी होता है तथा वह व्यक्ति ही उसे चलाता है तब यह एकल स्वामित्व संगठन कहलाता है। परन्तु जब व्यक्तियों का समूह इसका स्वामी होता है, तब यह साझेदारी फर्म अथवा कंपनी अथवा सहकारी समिति का रूप ले सकता है। इस इकाई में आप इन विभिन्न प्रकार के व्यवसाय संगठनों के लक्षण, वर्गीकरण, गुण व सीमाओं की विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

चित्र 2.1 को देखिए। इस चित्र से आपको व्यवसाय के विभिन्न रूपों की जानकारी हो सकेगी।



चित्र 2.1: व्यावसायिक संगठनों के विभिन्न रूप

2.2 एकल स्वामित्व संगठन

एकल व्यापारी संगठन, जिसे एकल स्वामित्व (sole proprietorship) भी कहा जाता है, सबसे प्राचीन संगठन है और आज भी यह छोटे पैमाने के व्यवसायों के लिए सबसे अधिक अपनाया जाने वाला रूप है। स्थापना की दृष्टि से यह सबसे सरल है। इसके लिए, व्यक्ति सर्वप्रथम निश्चय करता है कि उसे किस प्रकार का व्यवसाय करना है और वह उसके लिए आवश्यक पूँजी जुटा लेता है। अपनी बचत से, अथवा अपने मित्रों तथा संबंधियों के ऋण लेकर पूँजी जुटाई जा सकती है। अपने ही मकान के एक भाग में अथवा किराए पर लिए मकान में वह अपना कारोबार शुरू कर सकता है। प्रायः वह व्यक्ति स्वयं ही अपने कारोबार का प्रबंधन करता है। इसके लिए वह अपने परिवार के सदस्यों की सहायता भी ले सकता है अथवा कुछ लोगों को नौकरी पर रख सकता है। कारोबार चलाने के लिए वह अन्य व्यक्तियों से सलाह ले सकता है, परन्तु उसका अपना निर्णय ही अंतिम निर्णय होता है। इस प्रकार एकल व्यापारी फर्म के मामलों में पूर्ण नियंत्रण रखता है। व्यवसाय में अर्जित कुल मुनाफे पर उसका अधिकार रहता है, इसीलिए यदि उसे घाटा हो जाए तो स्वाभाविक है कि उसका पूर्ण भार उसी को सहन करता पड़ता है।

अस्तु, अब हम एकल व्यापारी संगठन की परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैं – ''यह एक व्यक्ति का कारोबार होता है जिसमें वह अपनी पूँजी, कौशल तथा बुद्धिमत्ता से स्वतन्त्रतापूर्वक

स्वयं ही उत्पादन करता है, उसके समस्त लाभ को भोगने का अधिकारी अकेले ही होता है तथा स्वामित्व के पूर्ण जोखिम को वहन करता है।'' जे. एल. हैन्सन ने इसे परिभाषित करते हुए लिखा है, ''यह एक प्रकार के कारोबार की इकाई है जिसमें एक ही व्यक्ति पूर्ण रूप से पूँजी जुटाने, उद्यम का जोखिम उठाने कारोबार का प्रबंध करने के लिए उत्तरदायी होता है।'' व्यावसायिक संगठन के इस रूप में स्वामी और फर्म में कोई अंतर नहीं रखा जाता है। इसी प्रकार, उसी व्यक्ति के हाथों में कारोबार का प्रबंध भी रहता है।

2.2.1 प्रमुख विशेषताएँ

उपयुक्त विवेचन के आधार पर हम एकल व्यापारी संगठन की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार गिना सकते हैं :

1) **एक ही व्यक्ति का स्वामित्व :** इस प्रकार के उद्यम पर एक ही व्यक्ति का स्वामित्व होता है। उसमें सहयोगी अथवा साझेदार नहीं होते। वह अपनी पूँजी लगाता है अथवा अपने मित्रों व संबंधियों से ऋण लेकर पूँजी जुटाता है।

2) **स्वामित्व तथा प्रबंधन में पृथकता नहीं :** स्वामी स्वयं ही व्यवसाय का प्रबंधन करता है। अतः स्वामित्व तथा प्रबंधन की पृथकता, जो बड़े व्यवसायों में प्रायः देखी जाती हैं, इस प्रकार के व्यवसाय में दिखाई नहीं देती। चूँकि स्वामी ही व्यवसाय का प्रबंधन करता है। अतः वह व्यवसाय के संचालन का बहुत अच्छी तरह देखरेख व नियंत्रण करता है।

3) **कोई पृथक अस्तित्व नही :** व्यावसायिक उद्यम का स्वामी से भिन्न अस्तित्व नहीं रहता। स्वामी एवं व्यावसायिक उद्यम एक ही होते हैं।

4) **समस्त लाभ स्वामी का ही होता है :** चूँकि साझेदार नहीं होते, अतः समस्त लाभ एकल स्वामी को ही प्राप्त होता है।

5) **जोखिम अकेले स्वामी की ही होती है :** व्यवसाय में होने वाली सम्पूर्ण हानि स्वामी को ही अकेले वहन करनी होती है।

6) **असीमित दायित्व :** स्वामी का दायित्व असीमित होता है। इसका अर्थ यह है कि हानि होने पर स्वामी की निजी सम्मत्ति से भी व्यावसायिक देयता व ऋणों का शोधन करना पड़ सकता है।

7) **कम कानूनी औपचारिकताएँ :** एकल व्यावसायिक इकाई स्थापित करने के लिए कम कानूनी औपचारिकताएँ निभानी पड़ती हैं। हाँ, किसी विशेष प्रकार का व्यवसाय स्थापित करने पर कुछ कानूनी प्रतिबंध अवश्य हैं। उदाहरण के लिए, एक अकेला व्यक्ति बैंक अथवा बीमा कंपनी की स्थापना नहीं कर सकता। परन्तु वह चाट की दुकान या साईकिल की दुकान बिना अधिक कानूनी औपचारिकताओं के शुरू कर सकता है। फिर भी कुछ दशाओं में उसे लाइसेंस लेना पड़ जाता है। उदाहरण के लिए, रेस्तरां चलाने के लिए नगर निगम से लाइसेंस लेना आवश्यक हो जाता है।

2.2.2 गुण व सीमाएँ

एकल व्यापारिक उपक्रम की प्रमुख विशेषताओं का आपको ज्ञान हो चुका है। इन विशेषताओं के संदर्भ में, संगठन के इस रूप में निम्नलिखित गुण व सीमाएँ पाई जाती हैं।

गुण

1) **सुगम स्थापना :** संगठन के इस रूप की स्थापना में कानूनी औपचारिकताएँ नहीं

निभानी पड़ती। अतः इसकी स्थापना सरल होती है। स्थापना की प्रक्रिया में किया जाने वाला व्यय भी नगण्य होता है।

2) **प्रत्यक्ष प्रेरणा :** जैसा कि आप जानते हैं, व्यवसाय के सभी फायदे और लाभ एकल स्वामी के ही जेब में जाते हैं। इससे स्वामी को अधिक परिश्रम करने और व्यवसाय को विकसित करने की प्रेरणा मिलती है, जिससे लाभ दिन-प्रति-दिन बढ़ता जाता है। अस्तु, व्यवसाय में उसकी लगन पूरी तथा निर्बाध होती है।

3) **पूर्ण नियंत्रण :** स्वामी अपने व्यवसाय का सर्वेसर्वा होता है। वह सम्पूर्ण व्यवसाय का प्रबंधन करता है समस्त निर्णय स्वयं ही लेता है। अन्य शब्दों में व्यवसाय के कार्य-संचालन पर स्वामी का पूर्ण नियंत्रण रहता है।

4) **शीघ्र निर्णय :** निर्णय लेने के लिए स्वामी को अन्य व्यक्तियों पर निर्भर नहीं रहना पड़ता, क्योंकि कोई साझेदार नहीं होते, इसीलिए किसी दूसरे से सलाह लेने की उसे आवश्यकता नही पड़ती। इससे वह अपने व्यवसाय से संबंधित अनेक विषयों में शीघ्र निर्णय ले सकता है।

5) **कारोबार में लचीलापन :** छोटा संगठन होने के नाते, परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तन करना सरल होता है। बड़े संगठनों में परिवर्तन करना कठिन हो जाता है।

6) **गोपनीयता :** चूँकि सम्पूर्ण व्यवसाय स्वामी द्वारा ही संचालित किया जाता है, इसीलिए व्यवसाय की गोपनीय बातों की केवल उसको ही जानकारी रहती है। उसे अपने लेखों को प्रकाशित नहीं करना पड़ता। अतः इस प्रकार के संगठन में पूरी गोपनीयता रखी जा सकती है।

7) **व्यक्तिगत संपर्क** : चूँकि स्वामी व्यवसाय से संबंधित सभी कार्यों का स्वयं ही संचालन करता है, इसलिए उसे अपने ग्राहकों से व्यक्तिगत सम्पर्क बनाए रखना सरल हो जाता है। वह उनकी रुचि, पंसद और नापसंद को सरलता से जान सकता है और अपना कार्य तथा व्यवहार उन्हीं के अनुरूप ढाल सकता है। इसी प्रकार ऐसे संगठन में यदि कुछ कर्मचारी भी हों तो वे अपने स्वामी के सीधे संपर्क में रहते हैं। अतः स्वामी को अपने कर्मचारियों से मधुर संबंध बनाए रखने के पर्याप्त अवसर मिलते हैं।

8) **व्यवसाय के समापन में आसानी :** सह-स्वामियों तथा साझेदारों के न होने से मतभेद का प्रश्न नहीं उठ पाता और व्यवसाय का सरलता से समापन किया जा सकता है। स्वामी को व्यवसाय से मुक्त होने की स्वतंत्रता रहती है। वह किसी भी समय अपने व्यवसाय को छोड़ सकता है या जब भी वह चाहे उसे बेच सकता है। स्थापना तथा समापन की सरलता के कारण एकल स्वामित्व रूप अपनाया जाता है, क्योंकि इससे किसी व्यवसाय के चलने या ठप्प हो जाने की परख हो सकती है।

सीमाएँ

1) **सीमित साधन :** एक अकेले व्यक्ति के पास पूँजी तथा अन्य साधन सदा सीमित मात्रा में ही होते हैं। एकल व्यापारी को तो मुख्य रूप से अपनी कमाई और पूँजी पर ही निर्भर रहना होता है अथवा आवश्यकता पड़ने पर अधिक से अधिक वह अपने मित्रों तथा संबंधियों से ऋण ले सकता है। इस प्रकार स्वामी की पूँजी जुटाने की क्षमता सीमित होती है। यही कारण है कि बड़े पैमाने पर किसी व्यवसाय के विस्तार की योजना को सरलता से पूरा करना दुष्कर होता है।

2) **सीमित प्रबंध-क्षमता :** आधुनिक व्यवसाय में उत्पादन, वित्त, विपणन आदि विभिन्न क्षेत्रों में ज्ञान व कौशल की आवश्यकता होती है। इन सभी क्षेत्रों का विशिष्ट ज्ञान एक ही व्यक्ति के पास होना संभव नहीं है। अतः यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि उसके निर्णय संतुलित ही होंगे।

3) **बड़े पैमाने पर कारोबार के लिए उपयुक्त नहीं :** एकल व्यापारी के पास साधन सीमित होते हैं। अतः यह छोटे पैमाने पर चलाए जाने वाले व्यवसायों के लिए ही उपयुक्त होता है, बड़े पैमाने के लिए नहीं।

4) **असीमित दायित्व :** आप जानते हैं कि स्वामी का दायित्व असीमित होता है। हानि की दशा में उसकी निजी सम्पत्ति तथा वस्तुएँ भी फर्म की देयता का शोधन करने में लगाई जा सकती हैं। अतः वह बड़ी जोखिम लेने के लिए तैयार नहीं हो सकता और अपने व्यवसाय का विस्तार करने के लिए उत्साह नहीं जुटा पाता है।

5) **कम स्थायित्व :** व्यवसाय की निरंतरता तथा स्थायित्व केवल एक ही व्यक्ति पर निर्भर होता है। जब उस व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है तो फर्म को बंद करने की नौबत आ सकती है।

6) **कोई रोकथाम और नियंत्रण नहीं :** एकल व्यापारी चूँकि अपनी फर्म का बादशाह होता है इसलिए कोई भी बाहरी व्यक्ति उसके कार्य व व्यवहार पर उँगली नहीं उठा सकता। एकल व्यापारी पर कोई रोकथाम और नियंत्रण नहीं होता।

7) **बड़े पैमाने पर व्यवसाय के लाभ की संभावना :** एकल व्यापारी बहुधा छोटे पैमाने पर ही अपना कारोबार चलाता है, अतः वह बड़े पैमाने पर उत्पादन अथवा क्रय-विक्रय से होने वाले लाभ से वंचित रह जाता है। इससे कारोबार की लागत के अधिक होने की संभावना बनी रहती है।

बोध प्रश्न 1

1) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

   i) एकल व्यापारी का दायित्व ..... होता है।

   ii) एकल व्यापारी को दायित्व ..... की जेब में जाता है।

   iii) एकल व्यापार संगठन तभी उपयुक्त होता है जब व्यवसाय का आकार .... होता है।

   iv) एकल व्यापार संगठन में स्वामियों की संख्या ..... होती है।

   v) एकल व्यापार संगठन में निर्णय लेना केवल ..... के हाथ में होता है।

2) बताएं की निम्नलिखित कथन सही हैं अथवा गलत।

   i) एकल स्वामित्व बड़े पैमाने के व्यवसायों के लिए सर्वथा ..... उपयुक्त होता है।

   ii) एकल व्यापार संगठन में स्वामी व्यापारिक फर्म से भिन्न ..... नहीं होता है।

   iii) एकल व्यापारी के स्वामी की पूँजी जुटाने की क्षमता असीमित ..... होती है।

iv) हानि की स्थिति में एकल व्यापारी को व्यावसायिक दायित्व ..... अपनी निजी सम्पत्ति से भी चुकाने पड़ते हैं।

v) एकल स्वामित्व व्यवसाय पर बहुत से व्यक्तियों का स्वामित्व ..... होता है परन्तु प्रबंधन एक ही व्यक्ति द्वारा किया जाता है।

2.3 साझेदारी संगठन

आप पढ़ चुके है कि एकल व्यापार संगठनों के सीमित वित्तीय साधन, सीमित प्रबंध-कौशल एवं योग्यता तथा असीमित दायित्व होते हैं। यदि व्यापार का विस्तार करना हो तो अधिक पूँजी तथा अधिक प्रबंध कौशल की आवश्यकता होती है। साथ ही जोखिम भी बढ़ जाती है। एकल व्यापारी इन सभी शर्तें को पूरा करने में असमर्थ हो सकता है। एक व्यक्ति के पास प्रबंध-कौशल तो नहीं, परंतु पूँजी हो सकती है। अच्छा प्रबंधक हो सकता है। परंतु वह पर्याप्त पूँजी नहीं जुटा पाता। ऐसी स्थिति में दो अथवा दो से अधिक व्यक्ति मिल जाते हैं और अपनी पूँजी एवं कौशल को मिलाकर व्यवसाय को संगठित करते हैं। इस प्रकार का व्यावसायिक संगठन साझेदारी संगठन कहलाता है। एकल स्वामित्व संगठन की सीमाओं तथा असफलताओं के परिणामस्वरूप ही इसका विकास हो पाया है।

जे. एल. हैन्सन ने इस रूप की परिभाषा इस प्रकार दी है – ''साझेदारी व्यावसायिक संगठन का एक ऐसा रूप है जिसमें दो अथवा दो से अधिक और अधिक से अधिक 20 व्यक्ति किसी कारोबार को करने के लिए एक साथ मिल जाते हैं।''

भारतीय भागीदारी अधिनियम 1932 के अंतर्गत दी गई परिभाषा इस प्रकार है – ''साझेदारी उन व्यक्तियों के बीच का संबंध है जो सभी के द्वारा संचालित अथवा सभी की ओर से उनमें से किसी एक के द्वारा संचालित कारोबार का लाभ बाँटने के लिए सहमत होते हैं।''

यू.एस.ए. के यूनीफार्म पार्टनरशिप ऐक्ट के अनुसार ''साझेदारी दो अथवा दो से अधिक व्यक्तियों के बीच का साहचर्य है जो मुनाफा बाँटने के लिए किसी कारोबार को सहस्वामी के रूप में चलाते हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि साझेदारी दो अथवा दो से अधिक व्यक्तियों के साहचर्य है जो सभी के द्वारा संचालित अथवा सभी की ओर से किसी एक के द्वारा संचालित कारोबार के लाभ को बाँटने के लिए आपस में मिले हुए होते हैं।

साझेदारी व्यवसाय के स्वामी व्यक्तिगत रूप से साझेदार कहलाते हैं तथा सामूहिक रूप से फर्म अथवा साझेदारी फर्म उन्हें आपस में हुए करार के अनुसार वे अपने हिस्से की पूँजी लगाते हैं तथा कारोबार को चलाने का दायित्व निभाते हैं। परंतु, कुछ स्थितियों में एक ही साझेदार सम्पूर्ण पूँजी अथवा उसका बहुत बड़ा भाग लगाता है और अन्य साझेदार चाहे कुछ पूँजी लगाएं या नहीं परंतु वे तकनीकी व प्रबंधकीय कौशल जुटाते हैं। आम तौर पर ये सभी शर्तें साझेदारी करार अथवा करारनामें में उल्लिखित रहती हैं।

2.3.1 प्रमुख विशेषताएँ

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम साझेदारी संगठन की प्रमुख विशेषताओं को इस प्रकार सूचीबद्ध कर सकते हैं :

1) **एक से अधिक व्यक्ति :** साझेदारी फर्म स्थापित करने के लिए कम से कम दो व्यक्तियों का होना आवश्यक होता है। व्यक्तियों की संख्या के संबंध में अधिकतम सीमा, बैंकिंग व्यवसाय में दस तथा अन्य व्यवसायों में बीस रखी गई है।

2) **संविदात्मक संबंध :** साझेदारी उन व्यक्तियों के बीच हुए समझौते से उत्पन्न होती है जिन्हें साझेदार कहा जाता है दूसरे शब्दों में कोई व्यक्ति करार के आधार पर ही साझेदार बन सकता है। यह करार मौखिक, लिखित अथवा निर्हित हो सकता है।

3) **लाभ का बंटवारा :** साझेदारों के बीच कारोबार के लाभ और हानि का बँटवारा करने के लिए भी करार आवश्यक होता है। यह साझेदारी के प्रमुख तत्वों में से एक है यदि दो अथवा दो से अधिक व्यक्ति एक सम्पत्ति के सह-स्वामी हैं और उसकी आय आपस में बांट लेते हैं तो उनके बीच का यह संबंध साझेदारी नहीं कहलायेगा।

4) **कारोबार का विद्यमान होना:** साझेदारों के बीच किए जाने वाले करार का उद्देश्य होता हैं विधिपूर्ण कारोबार की स्थापना करना और उससे होने वाले लाभ को बाँट लेना। यदि उद्देश्य कारोबार के अलावा और कुछ है तो यह साझेदारी नहीं कहलायेगा। उदाहरण के लिए, यदि उद्देश्य कोई धर्मार्थ कार्य करना है तो वह साझेदारी नहीं कहलायेगा।

5) **मालिक-एजेंट संबंध :** फर्म का कारोबार सभी के द्वारा अथवा सबकी ओर से एक अथवा कुछ के द्वारा चलाया जा सकता है। फर्म के कार्यकलाप में प्रत्येक साझेदार को भाग लेने का अधिकार होता है। फर्म के कारोबार के संबंध में अन्य पक्षकारों के साथ व्यवहार करते समय प्रत्येक साझेदार को फर्म तथा अन्य साझेदारों को प्रतिनिधित्व करने का अधिकार होता है। फर्म के नाम में तथा साधारण व्यवसाय के दौरान किए गए उसके कार्य सभी साझेदारों के लिए बाध्यकर होते हैं। इस अर्थ में साझेदार अन्य साझेदारों तथा फर्म का एजेंट माना जाता है।

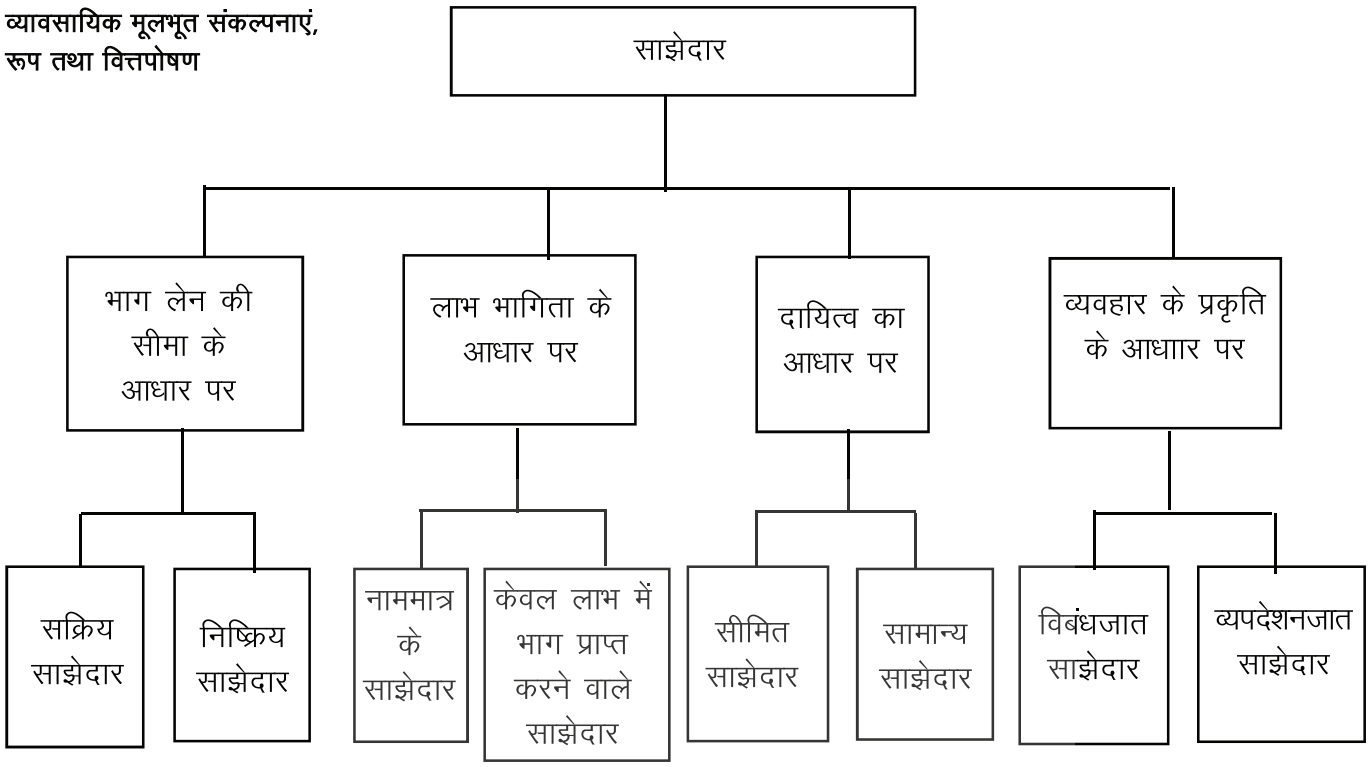
6) **असीमित दायित्व :** व्यवसाय संबंधी ऋण के प्रति प्रत्येक साझेदार का दायित्व असीमित होता है। इसका अर्थ यह है कि जब फर्म के पास अपने देयताओं का शोधन करने के लिए पर्याप्त परिसम्पत्ति नहीं होती तो साझेदारों को अपनी निजी परिसम्पत्ति से ये भुगतान करने होते हैं। ऋणदाता समस्त ऋण की रकम केवल एक साझेदार से भी वसूल कर सकते हैं। अस्तु सभी साझेदार संयुक्त तथा पृथकतः व्यवसाय के सम्पूर्ण ऋण तथा देयताओं के लिए उत्तरदायी होते हैं।

7) **सदाशयता तथा ईमानदारी :** साझेदारी करार साझेदारों के बीच सदाशयता पर आधारित होता है। साझेदार ईमानदार होने चाहिए तथा उन्हें एक दूसरे पर विश्वास करना चाहिए। उन्हें व्यवसाय के बारे में प्रत्येक जानकारी देनी चाहिए तथा एक दूसरे को फर्म के लेखों का सही चित्र प्रस्तुत करना चाहिए।

8) **शेयरों के हस्तांतरण पर रोक :** कोई भी साझेदार सभी साझेदारों की स्वीकृति लिए बिना बाहर के किसी व्यक्ति को अपने शेयरों का हस्तांतरण नहीं कर सकता।

2.3.2 साझेदारों का वर्गीकरण

आप पढ़ सकते हैं कि फर्म के कार्य-संचालन में भिन्न-भिन्न साझेदारों की भिन्न-भिन्न भूमिका होती है। एक साझेदार अधिक पूँजी लगा सकता है, जबकि दूसरा उसके प्रबंध में अधिक समय दे सकता है। उनकी जो भी भूमिका होती है उसके आधार पर हम साझेदारों को विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकरण कर सकते हैं। साझेदारों के वर्गीकरण के लिए चित्र 2.2 देखिए।



चित्र 2.2 : साझेदारों का वर्गीकरण

व्यवसाय के संचालन में भाग लेने की मात्रा के आधार पर साझेदारों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। (क) सक्रिय और (ख) निष्क्रिय अथवा सुप्त साझेदार।

क) **सक्रिय (Active) साझेदार :** यदि साझेदार फर्म प्रबंध में सक्रिय रूप से भाग लेता है तो वह सक्रिय साझेदार कहलाता है। उसे 'क्रियाशील साझेदार' भी कहा जाता है।

ख) **निष्क्रिय सुप्त (Dormant/Sleeping) साझेदार :** यदि साझेदार फर्म के कार्य संचालन में सक्रिय रूप से भाग नहीं लेता है तो उसे निष्क्रिय साझेदार कहा जाता है। निष्क्रिय साझेदार फर्म में केवल पूँजी लगाता है। वह फर्म के कार्य संचालन में भाग नहीं लेता। इस प्रकार के साझेदार को सुप्त साझेदार भी कहा जाता है।'

लाभ में भाग प्राप्त करने के आधार पर : साझेदारों को (क) नाममात्र के साझेदार तथा (ख) लाभ में भाग पाने वाले साझेदार के रूप में भी वर्गीकृत किया जा सकता है।

नाममात्र के (Nominal) साझेदार : वह साझेदार जो फर्म को केवल अपना नाम ही देता है, नाममात्र का साझेदार कहलाता है। वह न तो पूँजी लगाता है और न ही दिन-प्रतिदिन के कार्यों तथा प्रबंधन में भाग लेता है। इस प्रकार के साझेदारों को फर्म के लाभ में भाग नहीं मिलता। परन्तु वे अनय पक्षकारों के प्रति के कार्यो के लिए उत्तरदायी ठहराये जाते हैं।

लाभ में भाग पाने वाले साझेदार (Partners in Profits) : वह साझेदार जो फर्म के लाभ में तो भाग पाता है परंतु हानि होने की दशा में उत्तरदायी नहीं ठहराया जाता, लाभ में भाग पाने वाले साझेदार कहलाता है। नियमानुसार उसे फर्म के प्रबंधन में भाग लेने का कोई अधिकार नहीं होता। यह बात उस अवयस्क व्यक्ति पर लागू होती है जिसे फर्म के लाभ में भाग प्राप्त करने का अधिकार दिया गया है।

व्यवहार तथा आचरण के आधार पर : साझेदारों का वर्गीकरण (क) विबंधजात साझेदार और (ख) व्यपदेशनजात साझेदार के रूप में भी किया जा सकता है।

विबंधजात साझेदार (Partner by estoppel) : कोई व्यक्ति जब जनता के सामने इस प्रकार व्यवहार करता है कि वह यह समझने लगती है कि वह व्यक्ति फर्म का साझेदार है तो वह विबंधजात साझेदार कहलाता है। ऐसे व्यक्ति को फर्म के लाभ में भाग नहीं मिलता परन्तु वह फर्म दायित्वों के प्रति उत्तरदायी ठहराया जाता है।

व्यपदेशनजात साझेदार (Partner by Holding out) : यदि फर्म का साझेदार यह प्रदर्शित करता है कि अमुक व्यक्ति भी इस फर्म में साझेदार है और जब उस व्यक्ति को यह पता चलता है तब भी वह इस बात से इनकार नहीं करता अर्थात् यह नहीं कहता कि वह फर्म में साझेदार नहीं है, तो इस प्रकार का व्यक्ति व्यपदेशनजात साझेदार कहलाता है। इस प्रकार के साझेदार को फर्म के लाभ में भाग नहीं मिलता परन्तु वह फर्म के दायित्वों के प्रति उत्तरदायी होता है।

आपको इन दोनों प्रकार के साझेदारों के बीच अंतर को स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए। विबंधजात साझेदार वह होता है जो अपने व्यवहार तथा आचरण के अन्य व्यक्तियों के मस्तिष्क में यह विचार भर देता है कि वह फर्म का साझेदार है परन्तु व्यपदेशनजात साझेदार के लिए फर्म के अन्य साझेदार अन्य पक्षकारों से कहते हैं कि अमुक व्यक्ति भी फर्म का साझेदार है, जबकि वास्तव में ऐसा नहीं है और वह व्यक्ति इस बात का खंडन भी नहीं करता।

दायित्व के आधार पर भी साझेदारों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है :

(क) सीमित साझेदार (ख) सामान्य साझेदार

सीमित (Limted) साझेदार : इस प्रकार के साझेदार के दायित्व की सीमा उसके द्वारा फर्म मे लगाई हुई पूँजी तक ही होती है। वह फर्म के प्रबंधन में भाग लेने का अधिकारी नहीं होता, परन्तु अन्य सामान्य साझेदारों को परामर्श देने का अधिकार रखता है। उसके कार्य फर्म के लिए बाध्यकर नहीं होते। अपनी सूचना के लिए उसे फर्म की पुस्तकों को देखने का अधिकार होता है। इन साझेदारों को 'विशेष साझेदार' का नाम भी दिया जाता है।

सामान्य (General) साझेदार : यह असीमित साझेदार के नाम से भी जाना जाता है। उसका दायित्व असीमित होता है, और वह व्यवसाय के प्रबंधन में भाग लेने का भी अधिकारी है। सीमित साझेदार के अलावा अन्य साझेदार भी सामान्य साझेदार माने जाते हैं।

जैसाकि आप जानते हैं कि साझेदारी का दायित्व असीमित होता है। केवल सीमित साझेदारी के व्यवसाय संगठन में ही इस प्रकार के सीमित साझेदार पाये जाते हैं जो कुछ यूरोपीय देशों तथा संयुक्त राज्य अमरीका में होता है। **भारत में सीमित साझेदारी नहीं हो सकती।**

2.3.3 साझेदारी विलेख (Partnership Deed)

आप जानते हैं कि साझेदारी की स्थापना करार द्वारा की जाती है। इस प्रकार का करार मौलिक अथवा लिखित हो सकता है गलतफहमी तथा अनावश्यक मुकदमेबाजी से बचने के लिए लिखित करार करना सदैव वांछनीय होता है। जब लिखित करार पर विधिवत स्टाम्प लगा दिया जाता है और उसका पंजीकरण भी करा लिया जाता है। यह **साझेदारी विलेख** कहलाता है। पंजीकरण के पश्चात् साझेदारी को साझेदारी विलेख की एक प्रतिलिपि दे दी जाती है। एक साझेदारी (भागीदारी) विलेख में प्रायः निम्न बातें शामिल की जाती हैं :

1) फर्म का नाम

2) कारोबार की प्रकृति

3) साझेदारों के नाम

4) शहर तथा जगह का नाम जहां कारोबार किया जाना है

5) पूँजी की रकम, जो प्रत्येक साझेदार को लगानी होगी

6) प्रत्येक साझेदार का हानि-लाभ अनुपात

7) साझेदारों द्वारा किए गए ऋण और अग्रिम की राशि तथा उन पर दिए जाने वाले ब्याज की राशि

8) प्रत्येक साझेदार की आहरण की सीमा तथा उस पर लिए जाने वाले ब्याज की दर

9) पूँजी पर दिए जाने वाले ब्याज की दर

10) साझेदारों के कर्त्तव्य, अधिकार तथा दायित्व

11) सक्रिय साझेदार को यदि कुछ पारिश्रमिक दिया जाना हो तो उसकी राशि

12) लेखा पुस्तकों का रख-रखाव तथा लेखा परीक्षा की व्यवस्था

13) साझेदारी की विघटन की स्थिति में निपटान की विधि

14) साझेदार के प्रवेश, मृत्यु अथवा अवकाश ग्रहण करने के समय सुनाम (Goodwill) के मूल्यांकन की विधि

15) साझेदार के प्रवेश, मृत्यु अथवा अवकाश ग्रहण करने के समय परिसम्पत्तियों और देयताओं के पुनर्मूल्यांकन की विधि

16) साझेदार के अवकाश ग्रहण करने की विधि तथा अवकाश प्राप्त साझेदार अथवा मृत साझेदार को मिलने वाली रकम के भुगतान की विधि

17) साझेदारों के बीच विवाद की स्थिति में पंच-निर्णय

18) साझेदार के दिवालिया घोषित होने की स्थिति में की जाने वाली व्यवस्था

उपर्युक्त सूची में सभी बातें नहीं आ जातीं। यदि साझेदार चाहे तो अन्य कोई खंड भी भागीदारी विलेख में शामिल किया जा सकता है। वास्तव में भागीदारी अधिनियम में एक साझेदार के अधिकारों तथा कर्त्तव्यों की व्याख्या दी गई है। लेकिन साझेदारों के बीच करार होने पर ही अधिनियम के प्रावधान लागू होते हैं।

फर्म का पंजीकरण (Resigtration of the Firm) : भारतीय भागीदारी अधिनियम के अनुसार फर्म का पंजीकरण कराना अनिवार्य नहीं है। परंतु अपंजीकृति फर्म को कुछ सीमाओं का सामना करना पड़ता है। अतः फर्म को पंजीकृत करना अच्छा होता है। पंजीकरण किसी भी समय कराया जा सकता है। फर्म को पंजीकृत कराने के लिए फर्म के बारे में पूर्ण विवरण लिखकर एक प्रार्थनापत्र को पंजीकरण की फीस के साथ रजिस्ट्रार के कार्यालय में भेजना होता है।

2.3.4 गुण व सीमाएँ

आपने साझेदारी की प्रमुख विशेषताओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर ली है। इस जानकारी से आपको इस प्रकार से संगठन के गुणों तथा सीमाओं को पहचानने में मदद मिलेगी, जिन्हें नीचे दिया जा रहा है :

1) **सुगम स्थापना** : किसी एकल स्वामित्व संगठन की तुलना में यद्यपि साझेदारी फर्म की स्थापना उतना सरल नहीं है, तथापि कंपनी की स्थापना की तुलना में यह कम कठिन है। साझेदारी आपस में कारोबार करने के लिए करार करते हैं और एक साझेदारी करार तैयार करके उस पर अपने हस्ताक्षर कर देते हैं। इसके पश्चात् साझेदारी फर्म के नियमन के लिए कोई जटिल सरकारी नियम आवश्यक नहीं रह जाते।

2) **अधिक पूँजी की उपलब्धता :** एकल स्वामित्व संगठन के विपरीत साझेदारी फर्म में दो अथवा दो से अधिक व्यक्ति होते हैं। अतः साझेदारी फर्म एक ही व्यक्ति की पूँजी के सहारे नहीं चलती। साझेदारों के वित्तीय स्थिति के आधार पर फर्म की ऋण लेने की क्षमता में वृद्धि हो जाती है।

3) **अधिक विविध कौशल तथा विशेषज्ञता :** अधिक स्वामियों के होने के कारण साझेदारी फर्म में निर्णय अधिक व्यक्तियों के विचार-विमर्श पर निर्भर होता है। एक आदर्श साझेदारी में साझेदार एक दूसरे के पूरक होते हैं। वे एक ही पृष्ठभूमि तथा अनुभव के व्यक्ति नहीं होते हैं। एक साझेदारी विनिर्माण कार्य में विशेषज्ञ हो सकता है दूसरा विपणन के क्षेत्र में और तीसरा लेखा-पद्धति में निपुण हो सकता है। इन सभी साझेदारों का मिलकर निर्णय लेना व्यक्तिगत निर्णयों की तुलना में श्रेयस्कर होता है।

4) **लचीलापन :** एकल स्वामित्व संगठन की ही भांति साझेदारी व्यवसाय में भी साझेदार ही फर्म के स्वामी होते हैं और वे ही उसका कार्य-संचालन भी करते हैं। वह बदलती हुई परिस्थितियों को आसानी से समझ जाते हैं और शीघ्रता से उसके अनुसार कार्य कर सकते हैं।

5) **गोपनीयता :** साझेदारी फर्मों में भी कुछ गोपनीयता रखी जा सकती है, क्योंकि फर्म के लेखों को प्रकाशित करना आवश्यक नहीं होता।

6) **गहन रुचि :** व्यवसाय में होने वाली हानियों तथा जोखिमों के लिए साझेदार ही उत्तरदायी होते हैं अतः वे इसके कार्यों में विशेष रुचि लेते हैं।

7) **सुरक्षा :** मूल बातों के संबंध में एकमत से निर्णय लिए जाने के नियम के कारण, सभी साझेदारों के अधिकार पूर्णतः सुरक्षित होते हैं। यदि कोई साझेदार फर्म का कार्य करने के ढंग से असंतुष्ट होता है तो वह फर्म के विघटन की माँग कर सकता है तथा अपने को फर्म से पृथक कर सकता है।

8) **लापरवाही से किए जाने वाले नियमों पर रोकथाम तथा नियंत्रण :** चूँकि साझेदारी व्यवसाय सामूहिक आधार पर चलाया जाता है और महत्वपूर्ण निर्णय में सभी साझेदार भाग लेते हैं इसलिए बिना सोचे-समझे और जल्दबाजी में निर्णय किए जाने की बहुत कम गुंजाइश होती है।

9) **जोखिम का बँटवारा :** फर्म की हानियाँ सभी साझेदारों द्वारा बांटी जाती हैं, अतः एकल स्वामित्व संगठन की तुलना में प्रत्येक साझेदार के हिस्से में हानि का बहुत थोड़ा भाग आता है।

सीमाएँ

1) **सीमित पूँजी :** साझेदारों की अधिकतम संख्या पर सीमा के कारण (गैर-बैंकिंग व्यवसाय में 20 और बैंकिंग व्यवसाय में 10), साझेदारी फर्म की पूँजी जुटाने की क्षमता संयुक्त स्टॉक कंपनी की तुलना में कम होती है।

2) **असीमित दायित्व :** साझेदारी फर्म की सबसे महत्वपूर्ण कमी यह है कि उसके साझेदारों का दायित्व असीमित होता है।

3) **जन विश्वास नहीं :** चूँकि लेखे अप्रकाशित तथा अविज्ञापित होते हैं इसलिए फर्म को जनता का विश्वास प्राप्त नहीं हो पाता।

4) **हित की अहस्तांतरणीयता :** सभी अन्य साझेदारों की सहमति लिए बिना कोई भी साझेदार फर्म में अपना हित किसी अन्य व्यक्ति को हस्तांतरित नहीं कर सकता।

5) **अनिश्चितता :** किसी साझेदार की आकस्मिक मृत्यु होने अथवा उसके पागल अथवा दिवालिया होने की स्थिति में साझेदारी फर्म का विघटन हो जाता है। इस कारण फर्म के चलते रहने के संबंध में अनिश्चितता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। फिर भी यदि इस प्रकार की बातों को भागीदारी विलेख में स्पष्ट कर दिया जाए तो इस स्थिति से आंशिक रूप से बचा जा सकता है।

6) **साझेदारों में विरोध :** साझेदारों में प्रायः गलतफहमी और विरोध होने की आशंका रहती है। परिणामस्वरूप निर्णय करने में देरी तो होती ही है तथा फर्म के विघटन की भी नौबत आ सकती है। यदि भागीदारी विलेख स्पष्ट तथा विस्तृत हो तो यह समस्या कुछ सीमा तक दूर हो सकती है।

7) **निहित अधिकार की जोखिम :** चूँकि प्रत्येक साझेदार फर्म तथा अन्य साझेदारों के लिए एजेंट का कार्य करता है, इसलिए एक साझेदार के कार्य फर्म तथा अन्य साझेदारों के लिए बाध्यकर होते हैं। एक बेईमान अथवा अयोग्य साझेदार फर्म को मुसीबत में फँसा सकता है और अन्य साझेदारों को उसका परिणाम भुगतना पड़ सकता है।

बोध प्रश्न 2

1) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

   i) बैंकिंग कारोबार करने वाले साझेदारी व्यवसाय में साझेदारों की अधिकतम संख्या ..... होती है।

   ii) साझेदारी फर्म में साझेदारों का दायित्व ..... होता है।

   iii) वह साझेदार जो फर्म के प्रबंध में भाग नहीं लेता ..... साझेदार कहलाता है।

   iv) साझेदारी फर्म में साझेदारों की न्यूनतम संख्या ..... होती है।

   v) पंजीकृत साझेदारी करार ..... कहलाता है।

   vi) किसी व्यक्ति के अपने व्यवहार से यदि यह प्रकट होता है कि वह भी साझेदारी फर्म में एक साझेदार है तो ऐसे साझेदार को ..... कहा जाता है।

vii) यदि साझेदार का दायित्व उसके द्वारा लगाई गई पूँजी तक ही सीमित होता है तो ऐसा साझेदार ..... कहलाता है।

2) बताएँ की निम्नलिखित कथन **सही हैं** अथवा **गलत**।

i) साझेदारी करार लिखित ही होना चाहिए। ( )

ii) साझेदारी संगठन में सदस्यों की संखया की कोई अधिकतम सीमा नहीं होती। ( )

iii) साझेदार फर्म के सदस्य साझेदार कहलाते हैं। ( )

iv) अन्य साझेदारों की सहमति लिए बिना ही एक साझेदार फर्म में अपने हित को किसी अन्य व्यक्ति को हस्तांतरित कर सकता है। ( )

v) प्रत्येक साझेदार फर्म का स्वामी होता है तथा फर्म का एजेंट भी। ( )

vi) सुप्त साझेदार फर्म के कार्य संचालन में सक्रिय रूप में भाग लेता है। ( )

vii) एक व्यक्ति को व्यपदेशन द्वारा साझेदार बनता है लाभ प्राप्त करने का अधिकारी होता है। ( )

viii) एक साझेदार के कार्य फर्म तथा शेष साझेदारों के लिए बाध्य कर होते हैं। ( )

2.4 संयुक्त हिन्दू परिवार फर्म

संयुक्त हिन्दू परिवार अपने ढंग का विशिष्ट व्यावसायिक रूप हैं जो केवल भारत में ही पाया जाता है। इस प्रकार की फर्म का स्वामित्व संयुक्त हिन्दू परिवार को प्राप्त होता है और उस फर्म पर हिन्दू कानून के प्रावधान लागू होते हैं।

क) मिताक्षर : बंगाल तथा असम के अलावा यह सम्पूर्ण भारत में लागू होता है। इस शाखा के अनुसार हिन्दू अपने पिता, पितामह से उत्तराधिकारी में सम्पत्ति प्राप्त करता है। इस प्रकार पुरुष वंश में लगाातार तीन पीढ़ियाँ (पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र) पैतृक सम्पत्ति उत्तराधिकार में प्राप्त करती हैं। ये सभी सहदायिक (सह स्वामी) कहलाते हैं तथा परिवार का ज्येष्ठ व्यक्ति ''कर्त्ता'' कहलाता है। हिन्दू सक्सेशन ऐक्ट 1956 में सहदायिकी हित के उत्तराधिकारी क्षेत्र का विस्तार कर दिया है। अब मृतक सहदायिक (Coparcener) के स्त्री वंशज अथवा स्त्री वंशज के माध्यम से पुरुष संबंधी को भी भाग मिलने लगा है।

ख) दाय भाग : यह बंगाल तथा असम में लागू है। इसके अनुसार, पिता की मृत्यु के पश्चात् ही पुरुष उत्तराधिकारियों को सदस्यता प्राप्त होती है।

हिन्दू विधि (कानून) के अनुसार, 'कारोबार' एक दाय योग्य सम्पत्ति है। हिन्दू की मृत्यु के पश्चात् कारोबार के सभी सहदायिकों का संयुक्त रूप से स्वामित्व हो जाता है। सहदायिकों में ज्येष्ठतम व्यक्ति नया 'कर्त्ता' बन जाता है और कारोबार का प्रबंध करता है। यदि कोई सम्पत्ति किसी अन्य संबंधी से उत्तराधिकारी के रूप में प्राप्त होती है अथवा निजी साधनों से प्राप्त की जाती है तो वह निजी सम्पत्ति मानी जाती है और वह पैतृक सम्पत्ति से भिन्न होती है।

संयुक्त हिन्दू परिवार फर्म की महत्वपूर्ण विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :

1) परिवार का ज्येष्ठतम सदस्य जो कर्त्ता कहलाता है कारोबार चलाता है। अन्य सदस्यों को फर्म के प्रबंध में भाग लेने का कोई अधिकार नहीं होता।

2) अन्य सदस्य कर्त्ता के अधिकार पर आपत्ति नहीं कर सकते हैं। इसके लिए उसके पास एक ही तरीका रह जाता है कि वे आपसी सहमति से परिवार का विघटन कराये।

3) कर्त्ता को कारोबार के लिए ऋण लेने का अधिकार प्राप्त है। उसका दायित्व असीमित होता है, जबकि अन्य सदस्यों का दायित्व कारोबार में उनके हित तक ही सीमित होता है।

4) यदि कर्त्ता ने कारोबार के धन का गबन किया है तो उसे अन्य सहदायिकों को क्षतिपूर्ति करनी होगी। जो संयुक्त संपत्ति में उनके हितों के अनुरूप होगी।

5) परिवार के किसी सदस्य की मृत्यु हो जाने से परिवार का कारोबार बंद नहीं हो जाता।

6) आपसी मतैक्य द्वारा संयुक्त हिन्दू पारिवारिक फर्म का विघटन किया जा सकता है।

आपको साझेदारी फर्म तथा संयुक्त हिन्दू परिवार में अंतर जान लेना चाहिए। संयुक्त हिन्दू परिवार हिन्दू विधि के प्रवर्तन का परिणाम है। किसी व्यवसाय को संयुक्त हिन्दू पारिवारिक व्यवसाय में बदलने के लिए किसी औपचारिक करार की आवश्यकता नहीं होती। परिवार के सदस्य स्वतः ही व्यवसाय के सहस्वामी बन जाते हैं। व्यवसाय का प्रबंधन केवल कर्त्ता ही कर सकता है। कर्त्ता का दायित्व असीमित होता है जबकि सहदायिकों का दायित्व व्यवसाय में उनके हित तक ही सीमित रहता है। सहस्वामियों के अधिकार, कर्त्तव्य और दायित्व हिन्दू विधि के प्रावधानों से नियंत्रित होते हैं। साझेदारी कुछ व्यक्तियों के बीच हुए करार का परिणाम होती है, और यह जरूरी नहीं कि व्यक्तियों में रक्त-संबंध हो। प्रत्येक साझेदार को व्यवसाय के प्रबंधन में भाग लेने का अधिकार होता है। प्रत्येक साझेदार का दायित्व असीमित होता है। साझेदारों के कर्त्तव्य, अधिकार तथा दायित्व पर भारतीय भागीदारी अधिनियम 1932 के प्रावधान लागू होते हैं।

2.5 कंपनी संगठन (Cooperative Organisation)

आप यह जान चुके हैं कि एकल व्यवसाय तथा साझेदारी व्यवसाय में सीमित साधन, असीमित दायित्व, सीमित प्रबंध कौशल आदि दोष पाए जाते हैं। संगठन का जीवन तथा स्थायित्व भी इनके स्वामियों/साझेदारों के जीवन तथा स्थायित्व पर निर्भर होता है। अतः ये संगठन बड़े पैमाने पर चलाए जाने वाले व्यवसायों के लिए उपयुक्त नहीं माने जाते।

बड़े पैमाने के व्यवसायों के लिए भारी निवेश तथा विशिष्ट प्रबंधन कौशल की आवश्यकता होती है। जोखिम का तत्व भी अधिक होता है। इन्हीं परिस्थितियों ने कंपनी जैसे व्यावसायिक संगठन को जन्म दिया है। संयुक्त पूँजी कंपनी की स्थिति में पूँजी एक या दो व्यक्तियों द्वारा नहीं जुटाई जाती, वरन् बहुत अधिक व्यक्तियों द्वारा जुटाई जाती है, जिन्हे शेयरधारी (Shareholder) कहा जाता है। इस प्रकार बड़ी मात्रा में पूँजी जुटाना संभव हो जाता है। एक संयुक्त पूँजी कंपनी, कारोबार चलाने के लिए व्यक्तियों का एक संघ है, जिसे कंपनी अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत कराया जाता है। यह कृत्रिम व्यक्ति कहलाता है क्योंकि इसका सृजन कानून द्वारा होता है। इसका एक अपना विशिष्ट नाम होता हैं, इसकी एक सार्व मुद्रा (कॉमन सील) होती है तथा इसकी अनंत सदस्यता होती है। यह अपने नाम से मुकदमा दायर कर सकती है और उसके नाम से उस पर मुकदमा दायर किया जा सकता है। कंपनी की अत्यंत व्यापक रूप से स्वीकृत परिभाषा (यू.एस.ए. में इसे कार्पोरेशन (निगम) कहा जाता है।) प्रधान न्यायमूर्ति मार्शल द्वारा दी गई है। उनके अनुसार कार्पोरेशन

(निगम) एक कृत्रिम, अदृश्य और अमूर्त जीव है जिसका अस्तित्व केवल कानून की दृष्टि में है। कानून द्वारा उत्पन्न जीव होने के कारण इसके केवल वे ही गुण होते हैं जिन्हें इसको जन्म देने वाला चार्टर प्रत्यक्ष रूप से अथवा परोक्ष रूप से इसे जीवित रखने के लिए प्रदान करता है। न्यायमूर्ति लार्ड लिंडले ने इसकी परिभाषा देते हुए कहा है, ''यह बहुत से व्यक्तियों का संघ है जो संयुक्त (Common Stock) में द्रव्य अथवा द्रव्य के मूल्य के बराबर की वस्तु का अंशदान करते हैं और एक सामान्य उद्देश्य के लिए उनका प्रयोग करते हैं। इस प्रकार जुटायी गयी रकम कंपनी की पूँजी कहलाती है। वे व्यक्ति जो इसमें अंशदान करते हैं अथवा जो इसके स्वामी होते हैं, इसके सदस्य कहलाते हैं। पूँजी का आनुपातिक भाग जिस पर प्रत्येक सदस्य का अधिकार होता है, उसका अंश (शेयर) कहलाता है''।

''दि कंपनीज़ एक्ट 1956'' ने संयुक्त पूँजी कंपनी की परिभाषा इस प्रकार दी है, '' ये शेयरों द्वारा सीमित कंपनी होती है जिसकी निश्चित मूल्य के शेयरों में विभाजित स्थायी प्रदत्त पूँजी अथवा निश्चित रकम की अधिकृत पूँजी होती है जो स्टॉक की भांति रखी तथा हस्तांतरित की जा सकती है। कंपनी की स्थापना इस सिद्वांत के आधार पर होती है कि केवल इसके सदस्य ही उन शेयरों अथवा स्टॉक के स्वामी हो सकते हैं, अन्य व्यक्ति नहीं।''

एक संयुक्त स्टॉक कंपनी में कंपनी के वास्तविक स्वामी शेयरधारी ही होते हैं। उनकी देयता सीमित होती है। वे अन्य व्यक्तियों को अपने शेयरों का हस्तांतरण कर सकते हैं। चूंकि शेयरधारी संख्या में बहुत अधिक होते हैं, अतः सभी कंपनी का प्रबंधन नहीं कर सकते। अतः वे एक निदेशकमंडल का निर्वाचन करते हैं जो कंपनी का प्रबंधन करता है। कंपनी का भाग्य इन निदेशकों के पथप्रदर्शन तथा निदेशन पर निर्भर होता है। ये निदेशक कंपनी का दिन-प्रतिदिन का कार्य करने के लिए कुछ व्यक्तियों की नियुक्ति करते हैं। कंपनी ऋण पत्रों (जिन्हें बॉण्ड) भी कहा जाता है का निर्गम कर अतिरिक्त पूँजी जुटा सकती है। आप संगठन के कंपनी स्वरूप इसकी मुख्य विशेषताएं, वर्गीकरण तथा इसके गठन के बारे में विस्तार से खंड 2 (इकाई 2) में जानेंगे। यहां हम संगठन के कंपनी प्रकार की खूबियों और सीमाओं को सूचीबद्ध करते हैं।

2.5.1 गुण व सीमाएँ

प्रायः सभी देशों में कंपनी संगठन लोकप्रिय तथा सफल रहा है। जहाँ बड़ी मात्रा में साधनों की आवश्यकता पड़ती है तथा उत्पादन बड़े पैमाने पर किया जाता है, संगठन का यह रूप उपयुक्त होता है। 20वीं सदी में संयुक्त स्टॉक कंपनियों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हुई है। अब हम संगठन के कंपनी रूप के गुण व सीमाओं का विवेचन करेंगे।

1) **बड़ी मात्रा में पूँजी :** संगठन के कंपनी के रूप में बड़ी संख्या के शेयरधारी होते हैं अतः बड़ी मात्रा में पूँजी प्राप्त करना संभव हो जाता है। जब कभी और पूँजी की आवश्यकता होती है, यह शेयर तथा ऋण-पत्र जारी कर सकती है। इस कारण केवल कंपनी जैसा संगठन ही सबसे अधिक उपयुक्त रहता है।

2) **सीमित दायित्व :** शेयरधारियों का दायित्व, यदि अन्यथा उल्लिखित न हो, उनके द्वारा लिए गए शेयरों के अंकित मूल्य तक अथवा उनके द्वारा दी गई गारंटी तक सीमित होती हैं। कंपनी से ऋणों की वसूली के लिए शेयरधारियों की निजी सम्पत्ति कुर्क नहीं कराई जा सकती। अस्तु, संगठन का यह रूप उन व्यक्तियों के लिए बड़ा आकर्षक है जो अधिक जोखिम नहीं उठाना चाहते। एकल स्वामित्व तथा साझेदारी व्यवसाय में बहुत अधिक जोखिम रहता है।

3) **स्थायी अस्तित्व :** कंपनी की पृथक विधिक सत्ता और शाश्वत जीवन होता है। निगम के जीवन पर शेयरधारी, निदेशक अथवा अधिकारी के पागल अथवा दिवालिया होने का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। कंपनी के जीवन की निरंतरता न केवल इसके सदस्यों के लिए वरन् समाज के लिए भी वांछनीय है।

4) **बड़े पैमाने के कारोबार से होने वाले बचत :** चूँकि ऐसी कंपनियाँ बड़े पैमाने पर कार्य करती हैं, अतः उन्हें बड़े पैमाने पर क्रय, विक्रय, उत्पाद आदि से होने वाले बचत का लाभ मिल जाता है। बड़े पैमाने की बचत के परिणास्वरूप कंपनी अपने ग्राहकों को सस्ती कीमत पर वस्तुएं उपलब्ध करा सकती है।

5) **विस्तार के लिए संभावना :** चूँकि सार्वजनिक कंपनी में शेयरधारियों की अधिकतम संख्या की कोई सीमा नहीं होती, अतः नवीन शेयरों और ऋणपत्रों का निर्गम करके उसका विस्तार करना सरल होता है। कंपनियाँ प्रायः अपने लाभ का कुछ भाग रिजर्व कोष में रखती है और इसका उपयोग विस्तार के लिए करती हैं।

6) **लोक-विश्वास :** कंपनियों पर सरकारी नियंत्रण एवं विनियम लागू होते हैं। उनकी लेखा पुस्तकों की चार्टर्ड एकाउंटेंट द्वारा लेखापरीक्षा की जाती है और उन्हें प्रकाशित भी किया जाता है। इससे कंपनियों की कार्यप्रणाली पर जनता में विश्वास उत्पन्न होता है।

7) **शेयरों की हस्तांतरणीयता :** शेयर बाजार में सार्वजनिक सीमित कंपनी के शेयर कभी भी बेचे जा सकते हैं। शेयरधारी अपनी इच्छा से कभी भी अपने शेयर बेच सकते हैं। इसके लिए अन्य शेयरधारियों की सम्मति लेना आवश्यक नहीं होता। शेयरधारी बिना अधिक कठिनाई के अपने शेयर नकदी में बदल सकते हैं।

8) **पेशेवरों द्वारा प्रबंधन :** आप जानते हैं कि कंपनी का प्रबंधन निदेशकों के हाथ में रहता है जो शेयरधारियों द्वारा निर्वाचित होते हैं। प्रायः अनुभवी व्यक्तियों को ही निदेशक निर्वाचित किया जाता है। आप यह भी जानते हैं कि दिन-प्रतिदिन के कार्य वेतन-भोगी प्रबंधकों द्वारा किए जाते हैं। ये प्रबंधक अपने-अपने क्षेत्र के विशेषज्ञ होते हैं। चूँकि कंपनियों का बड़े पैमाने पर कारोबार होता है तथा उनका मुनाफा भी बड़ी मात्रा में होता है अतः वे अच्छा वेतन देकर सुयोग्य पेशेवर प्रबंधकों की नियुक्ति कर सकती है। इस प्रकार संगठन के कंपनी रूप अपने निदेशकमंडल में तथा प्रबंधकों के विभिन्न पदों पर पेशेवर व्यक्तियों की सेवाएँ प्राप्त कर लेते हैं।

9) **कर-लाभ :** कंपनियाँ एक समान-दर (Flat rate) पर आयकर देती हैं। इसके कराधान में स्लैब पद्धति का कोई स्थान नहीं है। इसके फलस्वरूप कंपनियाँ अन्य संगठनों की तुलना में अधिक आय पर कम कर चुकाती हैं। यदि वे पिछड़े क्षेत्रों में स्थापित की जाएं तो उन्हें कर में कुछ छूट भी प्राप्त होती है।

10) **जोखिम का बँटवारा :** चूँकि कंपनी के सदस्यों की संख्या बहुत अधिक होती है अतः व्यापारिक जोखिम कंपनी के सभी सदस्यों में बँट जाती है। यह छोटे-छोटे निवेशकों के लिए लाभदायक सिद्ध होता है।

सीमाएँ

1) **स्थापना में कठिनाई :** कंपनी की स्थापना उतनी सरल नहीं है जितनी कि एकल स्वामित्व व्यवसाय अथवा साझेदारी व्यवसाय की। कंपनी के निगमन के लिए कुछ

व्यक्तियों को परस्पर सहयोग करने के लिए तैयार होना पड़ता है, जिन्हें प्रवर्तक कहा जाता है। इसके पंजीकरण के समय अनेक औपचरिकताओं को निभाना पड़ता है। कंपनी की स्थापना खर्चीली भी है और कठिन भी।

2) **गोपनीयता का अभाव :** कंपनी का प्रबंधन प्रायः बहुत से व्यक्तियों के हाथों में रहता है। निदेशकमंडल की बैठक में प्रत्येक बात पर विचार किया जाता है। अतः एकल व्यवसायी तथा साझेदारी फर्म की तुलना में संगठन के कंपनी रूप की व्यावसायिक बातों को गोपनीय रखना अपेक्षाकृत कठिन हो जाता है।

3) **निर्णय लेने में देरी :** संगठन के कंपनी रूप में सभी महत्वपूर्ण निर्णय या तो निदेशक मंडल द्वारा अथवा शेयरधारियों द्वारा अपनी बैठकों में किए जाते हैं। अतः निर्णय-प्रक्रिया में समय लगता है। यदि शीघ्र निर्णय किया जाना है तो तुरंत बैठक का आयोजन करना कठिन हो जाएगा, और निर्णय में देरी के कारण कुछ व्यावसायिक अवसर हाथ से निकल जाएँगे।

4) **अल्प हितों की उपेक्षा :** शेयरधारियों के बहुसंख्यक वर्ग के प्रतिनिधि निदेशक मंडल के सदस्य बन जाते हैं। अल्पसंख्यक शेयरधारी वर्ग कभी भी निदेशकमंडल में प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं कर पाते। परिणामस्वरूप, अल्पसंख्यक सदस्यों के हितों की अवहेलना होती रहती है। तथा वे बहुसंख्यक वर्ग के हाथों सताए जाते रहते हैं।

5) **आर्थिक शक्ति का संकेंद्रण :** संगठन का कंपनी रूप आर्थिक शक्ति को कुछ हाथों में केंद्रित करने को बढ़ावा देता है। कुछ व्यक्ति बहुत सी कंपनियों में निदेशक बन जाते हैं तथा निजी हितों को पूरा करने वाली नीतियाँ अपनाते हैं। वे अन्य अनेक कंपनियों के शेयर खरीदकर उन्हें नियंत्रित कंपनियाँ बना लेते हैं। कंपनियों की स्थापना तथा कुछ व्यक्तियों को बहुत सी कंपनियों का निदेशक बन जाना कुछ ही व्यापारिक गृहों के हाथों में आर्थिक शक्ति को केंद्रित करने में सहायक होते हैं।

6) **व्यक्तिगत रुचि की कमी :** एकल स्वामित्व तथा साझेदारी फर्मों का प्रबंधन स्वयं फर्म के स्वामियों द्वारा ही किया जाता है। कंपनी जैसे संगठन में दिन-प्रतिदिन का प्रबंधन वेतन भोगी अधिकारियों द्वारा किया जाता है। इन व्यक्तियों का कंपनी से कोई व्यक्तिगत लगाव नहीं रहता। इसके परिणामस्वरूप कर्मचारियों को अभिप्रेरित करने की शक्ति में कमी आ सकती है तथा उनकी कार्य-कुशलता घट सकती है।

7) **अधिक सरकारी प्रतिबंध :** कंपनी पर ऐसे बहुत से प्रतिबंध लगे होते हैं जिनमें एकल व्यवसाय तथा साझेदारी व्यवसाय बचे रहते हैं। अतः कंपनी को अपना बहुत सा समय तथा श्रम इन विभिन्न कानूनी औपचारिकताओं को पूरा करने में लगाना पड़ता है।

8) **कपट पूर्ण प्रबंधन :** कुछ कपटी प्रवर्तक जाली कंपनी बना लेते हैं तथा वे उनके शेयर निर्गमित कर लाभ रकम एकत्रित करते हैं। बाद में, उन कंपनियों का समापन कर वे अपना पल्ला झाड़ देते हैं। यह भी संभव है कि निदेशक एवं पेशेवर प्रबंधक अपने निजी लाभ के लिए कंपनी के धन का दुरुपयोग कर लें, जिससे कंपनी को हानि उठानी पड़े।

बोध प्रश्न 3

1) बताएँ की निम्नलिखित कथन **सही हैं** अथवा **गलत**।

   i) कंपनी कानून द्वारा उत्पन्न कृत्रिम व्यक्ति हैं। ( )

ii) कंपनी में शेयरधारी अन्य व्यक्तियों को अपने शेयरों का हस्तांतरण नहीं कर सकते। ( )

iii) बड़े पैमाने के व्यवसाय के लिए कंपनी जैसा संगठन उपयुक्त नहीं होता। ( )

iv) एकल स्वामित्व और साझेदारी फर्मों की तुलना में कंपनियाँ बड़े कारोबार की बचत का लाभ प्राप्त कर सकती हैं। ( )

v) कंपनी अपने नाम से संपत्ति का क्रय नहीं कर सकती हैं। ( )

iv) कंपनी की स्थापना में विधिक औपचारिकताएँ हैं। ( )

vii) कंपनी अपने शेयरधारियों से पृथक होती है तथा अपना पृथक अस्तित्व रखती है। ( )

viii) अधिकांश शेयरधारियों की मृत्यु हो जाने पर कंपनी का विघटन हो जाता है। ( )

2.6 सहकारी संगठन

सहकारी संगठन प्रायः रूप से कमजोर वर्गों द्वारा व्यवसायों के माध्यम से अपने समान आर्थिक हितों को प्राप्त करने के लिए स्थापित किए जाते हैं। सहकारी संगठनों का मूल सिद्धांत स्वयं की सहायता तथा परस्पर सहायता करना है। किसी भी सहकारी संगठन का मूल उद्देश्य अपने सदस्यों की सेवा करना होता है। इस दृष्टि से यह अन्य तीन संगठनों से भिन्न है, जो मुख्यतः लाभ कमाने के लिए होते हैं। सरकारी संगठन की महत्वपूर्ण विशेषताएँ लाभ के स्थान पर सेवा, प्रतियोगिता के स्थान पर परस्पर सहायता, निर्भरता के स्थान पर स्वावलंबन तथा कारोबार के स्थान पर नैतिक एकता बनाए रखना है।

अंतर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय द्वारा दी गई परिभाषा के अनुसार, ''सहकारी संगठन ऐसे व्यक्तियों का समूह है जिनके साधन प्रायः सीमित होते हैं, जिन्होंने स्वेच्छापूर्वक आपसी मेल-मिलाप से एक सार्वजनिक आर्थिक उद्देश्य की प्राप्ति के लिए लोकतंत्रात्मक रूप से चलाए जाने वाले व्यावसायिक संगठन की स्थापना की है, जो आवश्यक पूँजी को न्यायोचित आधार पर जुटाते हैं और उपक्रम के लाभ और जोखिम में समुचित भागीदार होते हैं।''

कालवर्ट ने सहकारिता की परिभाषा इस प्रकार दी है, '' यह एक प्रकार का व्यावसायिक संगठन है जिसमें व्यक्ति मनुष्य के नाते स्वेच्छापूर्वक एकत्रित होते हैं और समानता के आधार पर अपने आर्थिक हितों का प्रवर्तन करते हैं।''

भारतीय सहकारी सोसाइटी अधिनियम 1912 की धारा 4 में इसकी परिभाषा इस प्रकार दी गई है, ''यह एक संस्था है, जिसका उद्देश्य सहकारिता के सिद्धांतों के आधार पर अपने सदस्यों के आर्थिक हितों का प्रवर्तन करते है।''

उक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि सहकारी संगठन उन व्यक्तियों का स्वैच्छिक संघ है जो आर्थिक रूप से सशक्त नहीं होते और अपने पांवों पर खड़े नहीं हो सकते। वे लाभ कमाने उद्देश्य से नहीं, वरन् पर्याप्त वित्तीय साधनों के अभाव को दूर करने के लिए आपस में मिल जाते हैं। इस प्रकार के संगठन का मूल उद्देश्य स्वावलंबन तथा परस्पर सहायता करना होता है।

सहकारी संगठनों को उस राज्य में जहाँ सीमित का पंजीकृत कार्यालय स्थापित करना हो, सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार के कार्यालय में पंजीकृत कराना होता है। सहकारी समिति

की स्थापना के लिए कम से कम दस सदस्यों का होना आवश्यक है परन्तु सदस्यों की अधिकतम संख्या की कोई सीमा नहीं है।

कंपनी संगठन की ही भांति, सहकारी समिति के सदस्य समिति के स्वामी होते हैं। वे ही आवश्यक पूँजी जुटाते हैं तथा मुनाफे में से अपना भाग पाते हैं जिसे डिविडेंड या लाभांश कहते हैं। सदस्यों का दायित्व सीमित होता है।

समिति का प्रबंध समिति द्वारा किया जाता है जिसके सदस्यों का निर्वाचन इसकी वार्षिक साधारण सभा में होता है।

2.6.1 प्रमुख विशेषताएँ

उपर्युक्त विवेचन का आधार पर हम सहकारी संगठन की निम्नलिखित स्पष्ट विशेषताओं का उल्लेख कर सकते हैं :

1) **स्वैच्छिक संघ :** जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, एक सामान्य उद्देश्य को पूरा करने के लिए समान रुचि वाले व्यक्ति एक संघ बना लेते हैं जिसको वे इच्छापूर्वक कभी भी छोड़ सकते हैं। इसके दो महत्वपूर्ण अभिप्राय हैं :

   क) कोई भी व्यक्ति इसका सदस्य हो सकता है, चाहे उसकी जाति, मत, धर्म, रंग आदि कुछ भी हो।

   ख) सदस्य बिना किसी दबाव अथवा धमकी के संघ स्थापित करते हैं।

2) **स्वायत्तता तथा स्थायित्व :** सहकारी समिति संविधान, सामान्य नियम तथा चार्टर की सीमाओं के अंतर्गत स्वतः प्रबंध करने वाली संगठन होती है। अपने क्षेत्राधिकार के अंतर्गत यह आत्मनिर्भर होती है, अपना नवीकरण कर सकती है तथा अपना नियंत्रण स्वयं ही करती है। कंपनी की ही भांति सहकारी संगठन का भी अपने सदस्यों से पृथक् एवं स्वतंत्र अस्तित्व होता है। इस अर्थ में इसका शाश्वत जीवन होता है जिस पर सदस्यों के आने-जाने का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

3) **लोकतंत्रीय प्रबंध :** सहकारी संगठन का प्रबंधन एक प्रबंधन समिति करती है जिसका निर्वाचन साधारण सभा में सदस्य एकमत के आधार पर करते हैं, चाहे उनके पास कितने ही शेयर क्यों न हों। सदस्यों की साधारण सभा ही व्यापक रूप से समिति की कार्य नीति निर्धारित करती है, जिसके अंतर्गत प्रबंधन समिति को कार्य करना होता है। इस प्रकार सहकारी समिति के प्रबंध का मुख्य आधार लोकतंत्र ही है।

4) **पूँजी :** शेयर पूँजी के रूप में पूँजी सदस्यों से ही प्राप्त की जाती है। किंतु शेयर पूँजी इसके व्यवसाय में लगी पूँजी का एक सीमित अंश ही होती है। बहुत बड़ा भाग या तो सरकार से अथवा शीर्ष सहकारी संस्था से लिया गया ऋण होता है या केन्द्रीय अथवा राज्य सरकार द्वारा गया अनुदान होता है।

5) **सहकारी नियंत्रण :** भारत में सभी सहकारी समितियाँ 1919 के सहकारी सोसाइटी अधिनियम अथवा अन्य राज्य सहकारी सोसाइटी अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत होती है। सरकारी समितियों को इन्ही अधिनियमों के अंतर्गत वर्णित प्रावधानों के अनुसार कार्य करना होता है।

6) **सेवा भाव :** किसी भी सरकारी समिति का मुख्य उद्देश्य अपने सदस्यों को सेवा प्रदान करना है। इसके विपरीत जैसा कि आप जानते हैं, अन्य तीनों संगठनों का मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना होता है।

5) **पूँजी पर सीमित लाभ :** सहकारी व्यवस्था में सदस्यों के बीच लाभ का विभाजन उनके द्वारा दी गई पूँजी के आधार पर किया जाता है। लेकिन, शेयरधारियों को दिए जाने वाले लाभांश की दर 9 प्रतिशत ही है जो सरकारी सोसायटी अधिनियम द्वारा निर्धारित की गई है।

6) **अधिशेष का वितरण :** साझेदारी फर्म और कंपनी संगठन में सदस्यों के बीच मुनाफा उनके द्वारा लगाई गई पूँजी के अनुपात में बाँटा जाता है। परन्तु, सहकारी समितियों में शेयरधारियों को एक सीमित दर पर लाभांश देने के बाद बचे हुए लाभ की राशि को उनके बीच बोनस के रूप में बाँट दिया जाता है। यह बोनस पूँजी के अनुपात में नहीं बाँटा जाता वरन् उसके व्यवसाय के अनुपात में बांटा जाता है जो वे समिति के साथ करते हैं। उदाहरण के लिए, एक उपभोक्ता सहकारी समिति में समिति के सदस्यों ने समिति से जितने मूल्य की वस्तु खरीदी है उस कुल मूल्य के अनुपात में उन्हें बोनस मिलेगा। इस प्रकार उत्पादक समिति में बोनस बिक्री के लिए समिति को दी जाने वाली वस्तुओं के मूल्य के अनुपात में बाँटा जायेगा।

2.6.2 सहकारी समितियों का वर्गीकरण

समाज के विभिन्न वर्गों की भलाई के लिए सहकारी समितियाँ विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित की गई थीं। अतः विभिन्न प्रकार की सहकारी समितियाँ पाई जाती हैं। इनके निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रकार हैं :

1) **उपभोक्ता सहकारी समितियाँ (Consumer Co-operatives) :** वे लोग जो दिन-प्रतिदिन काम में लाई जाने वाली घरेलू वस्तुओं को उचित मूल्य पर प्राप्त करना चाहते हैं, उपभोक्ता सहकारी समिति बना लेते हैं। इन समितियों का प्रमुख उद्देश्य सदस्यों को अनुचित व्यापारिक बुराइयों तथा तीव्रगति से होने वाली मूल्यवृद्धि से बचाना होता है। ये समितियाँ थोक व्यापारियों का उत्पादकों से बड़ी मात्रा में वस्तुएं खरीदती हैं और उन्हें अपने सदस्यों तथा कभी-कभी गैर-सदस्यों को बेचती हैं।

2) **उत्पादक सहकारी समितियाँ (Producer's Co-operatives) :** ये समितियाँ लघु औद्योगिक उत्पादकों और कारीगरों द्वारा स्थापित की जाती हैं। इनको औद्योगिक समितियाँ भी कहा जाता है। इनका प्रमुख उद्देश्य उत्पादकों व कारीगरों को शोषण से बचाना होता है। वे सदस्यों को साख की सुविधा प्रदान करती हैं, कच्चे माल दिलाती हैं, उनके उत्पाद को बाजार में बेचती हैं और अवक्रय के आधार पर सदस्यों को मशीनरी खरीदने में सहायता करती हैं।

3) **विपणन सहकारी समितियाँ (Marketing Co-operatives) :** जब उत्पादक अपने माल की बिक्री करने के उद्देश्य से सहकारी समिति स्थापित करते हैं तो उन समितियों को विपणन समिति कहा जाता है। ये समितियाँ सदस्यों को माल बेचने के समय बिचौलियों के शोषण से बचाती हैं।

4) **गृह-निर्माण सहकारी समितियाँ (Housing Co-operatives) :** ये समितियाँ प्रायः शहरी क्षेत्रों में स्थापित की जाती हैं। अपने सदस्यों को गृह-सुविधा प्रदान कराना इनकी स्थापना का प्रमुख उद्देश्य होता है। गृह-निर्माण समितियाँ भूमि प्राप्त करती हैं, गृह-निर्माण की योजना तैयार करती हैं, मकानों को बनाती हैं और फिर उन्हें अपने सदस्यों को सौंप देती हैं। इनमें से कुछ भूमि को केवल मकान बनाने योग्य बनाती हैं और फिर प्लाट काटकर अपने सदस्यों के बीच उनका आवंटन कर देती हैं, जो अपने मकान उन प्लाटों पर बनाते हैं। ये गृह-निर्माण के लिए उनको ऋण की व्यवस्था भी कराती हैं।

5) **उधार समितियाँ (Credit Societies) :** उधार समितियाँ उन व्यक्तियों द्वारा स्थापित की जाती है जिन्हें उधार की आवश्यकता होती है। इस प्रकार की समितियाँ अपने सदस्यों को उचित ब्याज की दर पर उधार की सुविधा प्रदान करती हैं। ये समितियाँ कृषि उधार समितियों तथा गैर-कृषि उधार समितियों में वर्गीकृत की जा सकती हैं। इन समितियों को पुनः दो वर्गों में बाँटा जाता है – (i) अल्प तथा मध्यम अवधि के लिए उधार सुविधा प्रदान करने वाली समितियाँ तथा (ii) दीर्घ अवधि के लिए उधार प्रदान करने वाली समितियाँ।

   गैर-कृषि उधार समितियाँ औद्योगिक इकाइयों तथा अन्य संस्थाओं के कर्मचारियों द्वारा स्थापति की जाती हैं। लघु व्यापारियों, कारीगरों तथा कम-आय वर्ग वाले व्यक्तियों, द्वारा भी नगरों व कस्बों में उधार की आवश्यकता पूरी करने के लिए ये समितियाँ स्थापित की जाती हैं। सहकारी नगर बैंक, बचत समितियाँ, कर्मचारी उधार समितियाँ, औद्योगिक सहकारी बैंक, गृह-बंधक बैंक आदि इस श्रेणी में आते हैं।

6) **कृषि सहकारी समितियाँ (Farming Co-operatives) :** लघु कृषकों द्वारा बड़े पैमाने पर कारोबार से होने वाली बचतें प्राप्त नहीं की जा सकतीं। अतः वे सहकारी समिति का गठन करते हैं और अपने कार्यों को संयुक्त रूप से करके उनसे होने वाले लाभ को आपस में बांट लेते हैं। इस प्रकार की समितियाँ लघु व सीमांत कृषकों के लिए अत्यधिक लाभदायक होती हैं। इसके माध्यम से उन्हें बड़े पैमाने पर कारोबार के लाभ मिल जाते हैं। वे सहकारी उन्नत कृषि समिति, सहकारी काश्तकार कृषि समिति, सहकारी संयुक्त कृषि समिति, सहकारी सामूहिक कृषि समिति आदि गठित कर सकते हैं।

उपरोक्त सहकारी समितियों के अलावा भी बहुत सी अन्य प्रकार की समितियाँ स्थापित की जा सकती हैं क्योंकि सहकारिता सिद्धांत अनेक कार्यों तथा कारोबार पर भी लागू होता है। संसाधन समितियाँ, परिवहन समितियाँ, निर्माण समितियाँ, धोबियों की समितियाँ, मछुआरों की समितियाँ, तिलहन उगाने वालों की समितियाँ, डेरी समितियाँ, गन्ना उगाने वालों की समितियाँ, आदि प्रकार की सहकारी समितियाँ होती हैं। इन सब समितियों का उद्देश्य अपने सदस्यों की भलाई करना होता है।

2.6.3 गुण व सीमाएँ

विभिन्न प्रकार की सहकारी समीतियों के अपने-अपने गुण व सीमाएँ होती हैं। परन्तु कुछ गुण तथा सीमाएँ सभी प्रकार की सहकारी समितियों में पाई जाती हैं।

गुण

1) **सुगम स्थापना :** कंपनी की स्थापना की तुलना में सहकारी समिति की स्थापना अधिक सरल होती है। सहकारी समिति स्वेच्छापूर्वक बनाया गया एक संघ होता है और उसकी स्थापना के समय बहुत अधिक और गूढ़ औपचारिकताओं को नहीं निभाना पड़ता। कोई भी 10 वयस्क व्यक्ति स्वेच्छा से अपना संघ बनाकर सहकारी समितियों के रजिस्ट्रार के कार्यालय में उसे पंजीकृत करा सकते हैं।

2) **सीमित दायित्व :** कंपनी जैसे संगठन की ही भांति सहकारी समितियों के सदस्यों का दायित्व भी सीमित होता है।

2) **समाज सेवा :** सहकारिता सदस्यों के बीच भाई-चारे की भावना बढ़ाती है और उनके दैनिक जीवन में नैतिक तथा शैक्षणिक मूल्यों का महत्व जगाती है जो श्रेष्ठ जीवन के लिए आवश्यक हैं।

3) **सरकारी सहायता :** सरकार ने सहकारी समितियों को अपनी आर्थिक नीति का एक अंग बना लिया है। अतः इन समितियों को कारगर ढंग से चलाने में सहायता देने के लिए सरकार अनेक प्रकार के अनुदान, ऋण तथा वित्तीय सहायता प्रदान करती है।

4) **खुली सदस्यता :** सहकारी समितियों की सदस्यता सभी व्यक्यिों के लिए खुली होती है। आर्थिक स्थिति, जाति, रंग अथवा मत के आधार पर किसी भी व्यक्ति को सदस्य होने से नहीं रोका जाता है। इसमें सदस्यों की अधिकतम संख्या पर भी कोई प्रतिबंध नहीं लगाया गया है।

5) **उचित मूल्य पर वस्तुओं की पूर्ति :** समितियाँ सीधे ही उत्पादकों से वस्तुएँ खरीदती हैं और उन्हें अपने सदस्यों को सस्ते मूल्य पर बेचती हैं। वितरण की कड़ी के बीच से बिचौलियों को हटा दिया जाता है। उपभोक्ता सहकारी समितियाँ ऐसे समय पर अपने सदस्यों को आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति कराती हैं। जबकि बाजार में उसकी कमी हो जाती है। पूँजीगत माल भी (जैसे मशीनरी आदि) उत्पादकों से सीधे ही खरीदकर वे सदस्यों को बेचती हैं। इस प्रकार सहकारी समितियाँ सस्ती दर पर नियमित रूप से माल देने की व्यवस्था करती हैं।

सीमाएँ

1) **व्यावसायिक प्रतिभा की कमी :** सदस्यों को प्रायः व्यवसाय करने का अनुभव नहीं होता। अतः जब वे समिति के निदेशकमंडल के सदस्य बन जाते हैं तब समिति का कार्य संचालन प्रभावी ढंग से नहीं हो पाता। कंपनियों की भांति सहकारी समितियाँ प्रबंध-कुशलता बढ़ाने के लिए बाहर से प्रतिभाशाली तथा प्रशिक्षित व्यक्तियों को नियुक्त नहीं कर सकतीं। इसका कारण यह है कि ऐसा करना उनके उद्देश्यों तथा सीमित साधनों के अनुकूल नहीं होता।

2) **आपसी हितों का अभाव :** सदस्यों में सहकारिता का भावना कूट-कूटकर भरी होने पर ही सरकारी समिति सफल हो पाती है। परन्तु अभाग्यवश, कुछ प्रभावशाली सदस्य सहकारी समिति को अपने निजी लाभ का साधन बना लेते हैं।

3) **रुचि की कमी :** किसी भी व्यवसाय की सफलता के लिए कुछ वर्षों तक निरंतर प्रयास करने की आवश्यकता होती है परन्तु बहुत सी सहकारी समितियों में इस प्रकार की स्थिति नहीं पाई जाती। अपने प्रभावशाली प्रारंभ के थोड़े समय के बाद ही सहकारी समिति जीवनहीन तथा निष्क्रिय बनकर रह जाती है।

4) **समन्वय की कमी :** इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि सदस्यों का अंदरूनी मतभेद तथा प्रतिद्वन्द्विता बहुत सी शक्ति तथा साहस को समाप्त कर देते हैं। अनेक सहकारी संस्थाओं का समाप्ति का मूल कारण समन्वय का न होना और संयुक्त रूप से कार्य न करना ही रहा है।

5) **भ्रष्टाचार :** प्रबंधन और कार्य संचालन में व्याप्त भ्रष्टाचार सहकारी संगठन की एक बहुत ही महत्वपूर्ण कमी रही है।

6) **गोपनीयता की कमी :** सहकारी समिति के कार्य प्रायः सभी सदस्यों को ज्ञात हो जाते हैं और इन समितियों के लिए व्यावसायिक कार्यों की गोपनीयता बनाए रखना कठिन हो जाता है।

7) **अपर्याप्त प्रेरणा :** पूँजी पर मिलने वाला प्रतिफल क्योंकि बहुत कम होता है, अतः सहकारी समितियों के सदस्य समिति के कार्यों में बहुत रुचि नहीं लेते।

बोध प्रश्न 4

1) बताएँ की निम्नलिखित कथन **सही हैं** अथवा **गलत**।

   i) सहकारी संगठनों का प्रमुख उद्देश्य लाभ कमाना होता है। ( )

   ii) सहकारी समितियों का प्रबंध पूर्ण रूप से सरकार के हाथ में रहता है। ( )

   iii) सहकारी समिति कंपनी अधिनियम, 1956 के अंतर्गत निगमित की जाती है। ( )

   iv) सहकारी समितियों में प्रत्येक सदस्य समिति के साथ किए गए लेन-देन के अनुपात में बोनस पाने का हकदार होता है। ( )

   v) स्त्रियाँ सहकारी समितियों की सदस्य नहीं बन सकती हैं। ( )

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

   i) सहकारी समितियों में सदस्यों का दायित्व ..... होता है।

   ii) सहकारी समिति का गठन करने के लिए कम से कम ..... सदस्य होने चाहिए।

   iii) सहकारी समिति में सदस्यों की अधिकतम संख्या ..... होती है।

   iv) सरकारी समिति का प्रमुख उद्देश्य ..... होता है।

   v) सहकारी समिति में सदस्यों को शेयर पूँजी पर दिए जाने वाले लाभांश की अधिकतम दर ..... होती है।

2.7 सारांश

स्वामित्व के आधार पर व्यावसायिक संगठन के चार मुख्य रूप होते हैं :

1) एकल व्यपारी संगठन, 2) साझेदारी संगठन, 3) कंपनी संगठन और 4) सहकारी संगठन।

वह व्यवसाय जिसका एक ही व्यक्ति स्वामी होता हैं, वही पूँजी लगाता है और उसका ही नियंत्रण रहता है, एकल व्यापारी संगठन कहलाता है। लघु व्यवसायों के लिए यह सर्वाधिक उपयुक्त होता है। व्यावसायिक प्रतिष्ठान और स्वामी में कोई अन्तर नहीं रहता। नियंत्रण, गोपनीयता, स्थापना की सरलता तथा कम लागत, विघटन की सरलता और कम सरकारी हस्तक्षेप इस रूप के लाभ हैं। स्वामी की असीमित देयता, पूँजी जुटाने में कठिनाई, सीमित प्रबंधन कौशल, अस्थायी व्यावसायिक जीवन और योग्य कर्मचारियों को आकर्षित करने में कठिनाई इसके दोष हैं। साझेदारी दो या दो से अधिक व्यक्तियों का संघ है जो सहस्वामी के रूप में लाभ के लिए कारोबार चलाते हैं। साझेदार के बीच प्रायः लिखित अथवा मौखिक करार होता है जिसमें प्रत्येक साझेदार द्वारा कारोबार में किए गए योगदान का उल्लेख होता है। तथा उसकी भूमिका और करार के अन्य महत्वपूर्ण मुद्दों पर प्रकाश डाला जाता है। साझेदारों के विभिन्न प्रकार होते हैं, जिनके आधार (क) कारोबार में भाग लेने की सीमा, (ख) लाभ में भाग, (ग) दर्शाये गये व्यवहार और आचरण की प्रकृति, और (घ) दायित्व का वहन होते हैं। साझेदारी संगठन से एकल स्वामित्व संगठन के कुछ दोष दूर हो जाते हैं। साझेदारी के लाभ हैं– अधिक पूँजी, अधिक विशिष्ट प्रबंधन, अधिक स्थायित्व, प्रमुख कर्मचारियों को अधिक प्ररेणा, आदि। साझेदारी के दोष हैं – असीमित देयता, शेयरों के हस्तांतरण, में कठिनाई स्वामियों में मतभेद की संभावना, कम समय तक चलने की संभावना, आदि।

एकल स्वामित्व तथा साझेदारी की सीमाओं में कंपनी जैसे संगठन को जन्म दिया जाता है। कंपनी विधि द्वारा निर्मित एक कृत्रिम व्यक्ति होती है, इसका अपना नाम होता है, एक सार्व मुद्रा होती है तथा शाश्वत जीवन होता है। कंपनी संगठन के प्रमुख लाभों में शामिल हैं – शेयरधारियों की सीमित देयता, शेयरों की हस्तांतरणीयता, जीवन का स्थायित्व, अतिरिक्त पूँजी जुटाने में सुविधा, अधिक प्रबंधन कौशल, आदि। प्रमुख सीमाएँ हैं : स्थापना में कठिनाई और अधिक लागत, अधिक सहकारी, नियमन, गोपनीयता की कमी, निर्णय लेने में शीघ्रता की कमी की संभावना, आदि।

सहकारी संगठन उन व्यक्तियों का स्वैच्छिक संघ है, जो वित्तीय दृष्टिकोण से सुदृढ़ नहीं होते तथा अपने पांवों पर खड़े नहीं हो सकते। वे लाभ कमाने के उद्देश्य से आपस में नहीं मिलते वरन् पर्याप्त वित्तीय साधनों की कमी से उत्पन्न कठिनाई को दूर करने के लिए एकत्रित होते हैं। इसका आधारभूत उद्देश्य स्वावलंबन व आपसी सहायता करना है। सहकारी संगठन के लाभ हैं – स्थापना में सरलता, सीमित देयता, सरकारी सहायता, खुली सदस्यता आदि। सीमाएँ – व्यावसायिक प्रतिभा की कमी, आपसी हितों का अभाव, गोपनीयता की कमी, सदस्यों में प्रतिस्पर्धा, आदि।

2.8 शब्दावली

सक्रिय साझेदार (Active Partner) : ऐसा साझेदार जो साझेदारी व्यवसाय के कार्यकलाप में सक्रिय रूप में भाग लेता है।

चार्टर्ड कंपनी (Chartered Company) : ऐसी कंपनी जो राजा द्वारा विशेष शाही फरमान जारी करने के फलस्वरूप स्थापित होती है।

कंपनी (Company) : व्यक्तियों का एक संघ जो कंपनी अधिनियम के अंतर्गत पंजीकृत कराया गया है। यह विधि द्वारा निर्मित कृत्रिम व्यक्ति होती है, इसका अपना नाम होता है, एक सार्व मुद्रा होती है, शाश्वत जीवन होता है और सदस्यों से पृथक अस्तित्व होता है।

सहकारी संगठन (Coorperative Organisation) : व्यक्तियों का संघ जो सहकारी सोसाइटी अधिनियम के अंतर्गत स्वेच्छापूर्वक गठित किया जाता है।

सामान्य साझेदार (General Partner) : साझेदारी संगठन में एक साझेदार जिसकी असीमित देयता होती है तथा जो कारोबार के संचालन में भाग लेने का अधिकार रखता है।

सरकारी कंपनी (Government Company) : ऐसी कंपनी जिसमें कम से कम 51 प्रतिशत प्रदत्त शेयर पूँजी सरकार के अधिकार में होती है।

सीमित साझेदार (Limited Parther) : ऐसा साझेदार जिसकी देयता उसके द्वारा प्रदत्त पूँजी तक ही सीमित होती है।

संयुक्त हिन्दू परिवार फर्म (Joint Hindu Family Firm) : व्यावसायिक फर्म जिसका स्वामित्व संयुक्त हिन्दू परिवार के पास होता है।

नाममात्र के साझेदार (Nominal Partner) : ऐसा साझेदार जो फर्म को अपना नाम मात्र ही देता है। न तो वह फर्म में पूँजी लगाता है और न ही उसके संचालन में भाग लेता है।

साझेदार (Partner) : वह व्यक्ति जो साझेदारी फर्म का सदस्य होता है।

विबंधजात साझेदार (Partner by Estoppel) : ऐसा व्यक्ति जिसका व्यवहार तथा आचरण यह प्रदर्शित करता है कि वह फर्म में साझेदार है।

व्यपदेशनजात साझेदार (Partner by Holding Out) : यदि फर्म का कोई साझेदार किसी दूसरे व्यक्ति के बारे में कहता है कि वह भी फर्म में साझेदार है और वह दूसरा व्यक्ति इस बात की जानकारी के बावजूद इनकार नहीं करता तो ऐसा व्यक्ति व्यपदेशनजात साझेदार कहलाता है।

लाभ में साझेदार (Partner in Profits) : ऐसा साझेदार जो फर्म के लाभ में भाग लेता है परन्तु हानि में नहीं।

साझेदारी करार (Partnership Agreement) : साझेदारों के बीच लिखित अथवा मौखिक करार जिसमें साझेदारों को गठन, नियम तथा विनियम का उल्लेख होता है।

साझेदारी विलेख (Partnership Deed) : साझेदारी का एक लिखित करार जिस पर विधिवत मुहर लगी होती है और जो पंजीकृत भी होती है।

साझेदारी संगठन : कारोबार का लाभ बाँटने के लिए दो अथवा दो से अधिक व्यक्तियों का संगठन जो सभी के द्वारा अथवा सबके लिए किसी एक द्वारा संचालित होता है।

प्राइवेट लिमिटेड कंपनी (Private Limited Company) : ऐसी कंपनी, जो अपने अंतर्नियम द्वारा (क) अपने सदस्यों की अधिकतम संख्या 50 तक सीमित रखती है (ख) अपने शेयरों के हस्तांतरण पर प्रतिबंध लगाती है तथा (ग) जनता द्वारा शेयर तथा ऋण पत्र लेने पर रोक लगाती है।

पब्लिक लिमिटेड कंपनी (Public Limited Company) : ऐसी कंपनी जो प्राइवेट लिमिटेड कंपनी नहीं होती।

पंजीकृत कंपनी (Registered Company) : कंपनी अधिनियम के अंतर्गत निगमित कंपनी।

सुप्त साझेदारी (Sleeping Partner) : साझेदारी फर्म में साझेदार जो फर्म के कारोबार में सक्रिय रूप से भाग नहीं लेता।

एकल स्वामित्व संगठन (Sole Proprietorship) : एक व्यक्ति का व्यवसाय जिसमें व्यक्ति अपनी पूँजी, कौशल और बुद्धि लगाता है, सम्पूर्ण लाभ पाता और स्वामित्व का जोखिम वहन करता है।

सांविधिक कंपनी (Statutory Company) : संसद अथवा विधान सभा के विशेष अधिनियम द्वारा संस्थापित कंपनी।

असीमित देयता कंपनी (Unlimited Company) : ऐसी कंपनी जिसमें सदस्यों की देयता असीमित होती है।

2.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

यदुकुल भूषण एवं ओ.पी. अग्रवाल : **व्यावसायिक संगठन के सिद्धांत** (नई दिल्ली : सुल्तान चंद एंड संस, 1988) अध्याय 3-5 खंड दो।

बी.पी. सिंह एवं टी.एन छाबड़ा : **व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंधन का परिचय** (इलाहबाद : किताब महल, 1988) अध्याय 4, 5 खंड दो।

जी. एल जोशी, जी. एल. शर्माख एल. एस सी. जोशी : **व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध** (दिल्ली : श्री महावीर बुक डिपो, 1988) अध्याय 7-9।

राम नारायण गोयल : **आधुनिक व्यवसाय-संगठन एवं प्रबंध** (इलाहाबाद : किताब महल) अध्याय 1-4 खंड दो।

2.10 बोध प्रश्न के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) (i) असीमित (ii) स्वामी (iii) लघु (iv) एक (v) स्वामी

2) (i) गलत (ii) सही (iii) गलत (iv) सही (v) गलत

बोध प्रश्न 2

1) (i) दस (ii) असीमित (iii) सुप्त (iv) दो (v) भागीदारी विलेख (vi) विबँधजात साझेदार (vii) सीमित साझेदार।

2) (i) गलत (ii) गलत (iii) सही (vi) गलत (v) सही (vi) गलत (vii) सही (viii) सही

बोध प्रश्न 3

1) (i) सात, असीमित (ii) 2, 50 (iii) सीमित (iv) 51 (v) असीमित (vi) सांविधिक

2) (i) सही (ii) गलत (iii) गलत (iv) सही (v) गलत (vi) गलत (vii) सही (vii) गलत

बोध प्रश्न 4

1) (i) गलत (ii) गलत (iii) गलत (vi) सही (viii) गलत

(i) सीमित (ii) दस (iii) असीमित (vi) स्वावलंबन व आपसी सहायता (v) 9 प्रतिशत

2.11 अभ्यास के लिए प्रश्न

1) एकल व्यापारी संगठन क्या है? एकल व्यापारी संगठन के गुणों व सीमाओं का उल्लेख कीजिए।
2) साझेदारी संगठनों का जन्म मुख्य रूप से एकल स्वामित्व संगठनों की सीमाओं (दोषों) तथा असफलताओं के कारण ही हुआ। स्पष्ट कीजिए।
2) साझेदारी क्या है? संयुक्त स्टॉक कंपनी से यह किस प्रकार भिन्न होती हैं?
3) संयुक्त स्टॉक कंपनी क्या है? अनिगमित संगठनों की सीमाओं को यह कैसे दूर कर पाती है?
4) सहकारी संगठन की विशेषताएं बताइए। यह किन बातों में कंपनी से भिन्न होता है?
5) सहकारी संगठन के रूप के प्रमुख उद्देश्य क्या हैं? उसके गुणों और सीमाओं का उल्लेख कीजिए।

टिप्पणी : ये प्रश्न आपको इस इकाई को अधिक अच्छी तरह समझने में सहायक होंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयत्न कीजिए। किन्तु अपने उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

इकाई 3 व्यावसायिक संगठन के रूप-II

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 आदर्श व्यावसायिक संगठन के आवश्यक गुण

3.3 संगठन के विभिन्न रूपों की तुलना

3.4 संगठन के चुनाव का मापदंड

3.4.1 व्यवसाय प्रारम्भ करते समय मापदंड

3.4.2 विस्तार के समय मापदंड

3.5 संगठन के रूप का चुनाव

3.6 सारांश

3.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

3.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात्, आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- व्यावसायिक संगठन के एक आदर्श रूप के लक्षण बता सकें;
- व्यावसायिक संगठन के चार रूपों की तुलना कर सकें; तथा
- व्यावसायिक संगठन के रूप का चुनाव कर सकें।

3.1 प्रस्तावना

इकाई 2 में आपने पढ़ा था कि व्यावसायिक संगठन के चार रूप होते हैं – (i) एकल स्वामित्व, (ii)साझेदारी (iii)संयुक्त स्टॉक कंपनी, तथा (iv) सहकारी समिति। आपने इन चारों रूपों के गुणों तथा सीमाओं के विषय में भी जान लिया है।

एकल स्वामित्व तथा साझेदारी नियंत्रण, अभिप्रेरण स्थापना की सुगमता तथा कम लागत की दृष्टि से अधिक लाभकारी होते हैं, किंतु सीमित साधन, सीमित प्रबंधन कुशलता तथा असीमित दायित्व इनकी मुख्य कमियाँ हैं। दूसरी ओर, अधिक साधन, सीमित दायित्व तथा नानाविध प्रबंधन-कुशलता कंपनी संगठन के लाभ हैं।

जब आप एक नया व्यवसाय आरंभ करने की योजना बनाते हैं, तब आपको यह निर्णय करना होता है कि प्रस्तावित व्यवसाय के लिए संगठन का कौन सा रूप अधिक उपयुक्त है। इसके लिये आपको प्रस्तावित व्यवसाय की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए संगठन के चारों रूपों में से प्रत्येक की उपयुक्तता का समालोचनात्मक विश्लेषण करना होगा। यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण निर्णय है, क्योंकि यह उद्यमकर्त्ता की शक्ति तथा उत्तरदायित्व और लाभ-हानियों के विभाजन का निर्धारण करता है। एक बार इसका चुनाव हो जाने के बाद इसे बदलना अत्यन्त कठिन तथा खर्चीला होता है। इस इकाई में आप संगठन के एक अच्छे रूप के आवश्यक गुणों के विषय में पढ़ेंगे, संगठन के चार रूपों की तुलना करेंगे, संगठन के रूप

के चुनाव को प्रभावित करने वाले तत्वों का विश्लेषण करेंगे तथा यह निर्णय करेंगे कि स्थिति विशेष में कौन सा रूप सबसे उपयुक्त है।

3.2 आदर्श व्यावसायिक संगठन के आवश्यक गुण

इस बात का विवेचन करने के पूर्व कि किसी विशेष परिस्थिति में व्यवसाय के एक विशेष रूप का चुनाव किस प्रकार किया जाए, हमारे लिये यह जानना आवश्यक है कि संगठन के एक आदर्श रूप के आवश्यक गुण क्या हैं। इसमें हमें व्यवसाय के प्रत्येक रूप का सही मूल्यांकन करने तथा एक विशेषज्ञ रूप के उचित चुनाव का अंतिम निर्णय करने में सहायता मिलेगी संगठन के एक आदर्श रूप के आवश्यक गुण निम्नलिखित होते हैं।

1) **स्थापना की सुगमता (Ease of Formation) :** संगठन के किसी एक विशेष रूप को दूसरे पर तरजीह देने का एक प्रमुख कारण उस व्यवसाय को स्थापित करने की सुगमता होती है। संगठन के एक विशेष रूप की स्थापना की तुलनात्मक सुगमता अथवा कठिनाई मुख्यतः तीन बातों पर निर्भर करती है। (i) पंजीकरण-शुल्क, स्टांप-शुल्क, कानूनी विशेषज्ञों की फीस, प्रलेखों के प्रारूप बनाने का खर्च, लाइसेंस प्राप्त करने का खर्च, स्थापना संबंधी व्यय आदि, (ii) कानूनी औपचारिकताएँ, तथा (iii) क्रियाविधि संबंधी विलम्ब। जब तक अत्यन्त अनिवार्य न हो, ऐसे संगठन का चुनाव अच्छा होता है जिसकी स्थापना सुगमतापूर्वक की जा सकती है।

2) **पूँजी जुटाने का अवसर (Scope of raising Capital) :** संगठन की पंसद मुख्य रूप से आवश्यक पूँजी की मात्रा पर निर्भर करती है जो व्यापार के स्वरूप और संचालन के पैमाने से निर्धारित होती है। उदाहरणार्थ, यदि आप किराने की दुकान खोलना चाहते हैं तब अधिक पूँजी की आवश्यकता नहीं होगी। परन्तु यदि आप एक चीनी मिल लगाना चाहते हैं तब आपको पूँजी की एक बड़ी राशि की आवश्यकता होगी। संगठन का आदर्श रूप वह है जो यथासमय आवश्यकतानुसार पूँजी जुटाने के अवसर प्रदान करता हो।

3) **देयता की सीमा (Extent of liability) :** आप जानते हैं कि प्रत्येक व्यवसाय में जोखिम तथा अनिश्चितता का तत्व होता है। इस दृष्टि से, सामान्यतः व्यवसाय सीमित देयता पसन्द करते हैं। अतः सीमित देयता को एक अच्छे प्रकार के संगठन का महत्वपूर्ण लक्षण माना जाता है। किन्तु व्यवसाय में पहल शक्ति लगाव और प्रेरणा के लिए कुछ जोखिम भी आवश्यक होता है। कई बार इस प्रकार की प्रेरणा का अभाव प्रबन्धन कार्मिकों में दुर्बलता, अकुशलता तथा बेईमानी तक का कारण बन सकता है।

4) **कारोबार में लचीलापन (Flexibility of operations) :** संगठन का रूप बहुत लचीला होना चाहिए तथा बिना किसी कठिनाई अथवा जटिलता के, बदलती हुई व्यावसायिक स्थितियों के अनुसार परिवर्तनशील होना चाहिये। उदाहरण के लिए, यदि आप अपने व्यवसाय का विस्तार करना चाहते हैं अथवा संयंत्रों और उपस्करों का आधुनिकीकरण करना अथवा उसमें विविधता लाना चाहते हैं, तो संगठन को सब अपेक्षाओं को पूर्ण करने में सक्षम होना चाहिये।

5) **स्थायित्व तथा निरंतरता (Satability and continuity) :** स्वामियों, कर्मचारियों तथा ग्राहकों के हित में व्यवसाय का स्थायित्व तथा लम्बा जीवन अभीष्ट है। कर्मचारी सदा स्थायी तथा निरंतर रोज़गार पसंद करते हैं। यदि व्यवसाय स्थायी है तो स्वामी भविष्य के लिये योजना बना सकेगा, तथा लम्बे समय तक आय प्रदान करने वाले निवेश कर सकेगा। ग्राहकों की दृष्टि से भी, उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये माल और सेवाओं की नियमित पूर्ति अपेक्षित है। संगठन का एक आदर्श रूप वह है जो व्यवसाय को उचित मात्रा में स्थायित्व प्रदान करता है।

6) **प्रबंधन की क्षमता (Effectivness of management) :** जैसा कि आप जानते हैं, किसी भी व्यवसाय की सफलता प्रबंधन की कार्यकुशलता पर निर्भर होती है। प्रबंधन की कार्यकुशलता, उसके नैपुण्य, अभिप्रेरण, लचीलेपन तथा अनुकूलनीयता पर निर्भर होती है। किसी एक व्यक्ति में इन समस्त गुणों का होना कठिन है।

7) **सरकारी नियंत्रण व विनियमों की सीमा (Extent of government control and regulations) :** यदि सरकारी नियंत्रण तथा विनियम बहुत अधिक है, तो उद्यम को कानूनी औपचारिकताओं तथा अनुदेशों को पूरा करने में पर्याप्त समय, धन और शक्ति व्यय करनी पड़ेगी। कुछ स्थितियों में सरकारी पदाधिकारियों द्वारा फर्म के रोजमर्रा के कार्यो में अत्यधिक हस्तक्षेप हो सकता है। यह सच है कि जिन व्यावसायिक उद्यमों के कार्यों का समुचित रूप से सरकारी नियमन होता है उन पर निवेशकर्त्ताओं, लेनदारों तथा ग्राहकों का अधिक विश्वास होता है। किन्तु अत्याधिक सरकारी हस्तक्षेप उद्यमकर्त्ताओं द्वारा पसंद नहीं किया जाता क्योंकि यह उनकी पहल शक्ति को क्षति पहुँचाता है तथा उसके व्यवसाय के चलने बाधा डालता है।

8) **व्यावसायिक गोपनीयता (Business Secrecy) :** व्यवसाय में यह आवश्यक होता है कि व्यवसाय के रहस्यों को प्रतियोगियों से गुप्त रखा जाए। अतः संगठन के एक ऐसे रूप को, जो व्यावसायिक रहस्यों को गुप्त रखने में सहायक हो, उस रूप से अच्छा माना जाता है जिसमें व्यावसायिक रहस्यों को गुप्त रखना कठिन हो।

9) **कर-भार (Tex burden) :** बिक्रीकर, उत्पादन शुल्क तथा सीमा शुल्क जैसे व्यावसायिक कर कुछ विशेष उत्पादों तथा सेवाओं पर लगाए जाते हैं। अतः ऐसे करों का प्रभाव संगठन के प्रत्येक रूप पर एक-सा पड़ता है तथा इन रूपों के बीच चुनाव का इनका कोई प्रभाव नही पड़ता। किन्तु संगठन के विभिन्न रूपों के लिये आय-कर देयता अलग-अलग होती। अतः यह स्वाभाविक है कि संगठन के उस रूप को आदर्श माना जाए जिसकी आय-कर-देयता सबसे कम हो। इस दृष्टि से संयुक्त स्टॉक कंपनी संगठन को आदर्श माना जाता है क्योंकि इसे कर में बहुत सी राहतें मिलती हैं जो संगठन के अन्य रूपों में उपलब्ध नहीं होतीं।

10) **स्वामित्व के परमाधिकार (Ownership Prerogatives) :** कुछ व्यक्तियों की प्रबल इच्छा होती है कि वे समस्त व्यावसायिक क्रियाकलाप को स्वयं नियंत्रित करें। वे निजी नेतृत्व को अधिक महत्व देते हैं। कुछ लोग व्यवसाय के उत्तरदायित्वों तथा जोखिमों को दूसरों के साथ बाँटना चाहते हैं। कुछ लोग व्यावसायिक कार्यों पर नियंत्रण की प्रबल इच्छा के बिना पूँजी के एक भाग का स्वामित्व चाहते हैं। कुछ ऐसे लोग भी होते हैं जो व्यावसायिक जोखिम उठाने को तैयार नहीं होते हैं। संगठन का एक आदर्श रूप स्वामियों के ऐसे परमाधिकारों का ध्यान रखता है।

3.3 संगठन के विभिन्न रूपों की तुलना (Comparison of Various Firms)

आपने पढ़ा है कि एक आदर्श संगठन में स्थापना की सुगमता, सीमित देयता, पर्याप्त पूँजी जुटाने का अवसर, व्यावसायिक गोपनीयता, लचीलापन, व्यवसाय का स्थायित्व सरकारी नियंत्रण, कम कर-कर देयता आदि लक्षण होने चाहिये। आप जानते हैं कि संगठन के चार प्रमुख रूप हैं। ये हैं : (1) एकल स्वामित्व, (2) साझेदारी, (3) कंपनी, तथा (4) सहकारी समिति। संगठन के एक आदर्श रूप के लिए आवश्यक उपर्युक्त लक्षणों को ध्यान में रखते हुए, हम संगठन के इन चारों रूपों के लक्षणों की तुलना करेंगे। ऐसी तुलना द्वारा, सम्भवतः हम संगठन के उस रूप को पहचान पाएंगे जिसमें ये समस्त आदर्श लक्षण हों। तालिका 3.1 देखिये तथा व्यावसायिक संगठन के चार रूपों के लक्षणों की तुलना कीजिए।

तालिका 3.1 : संगठन के विभिन्न रूपों का तुलनात्मक अध्ययन

क्र. सं.	तुलना का आधार	एकल स्वामित्व	साझेदारी	प्राइवेट लिमिटेड कंपनी	पब्लिक लिमिटेड	सरकारी संगठन
1	स्थापना	सबसे सुगम, किसी प्रकार की कानूनी औपचारिकता आवश्यक नहीं	अत्यंत सुगम, कोई कठोर कानूनी औपचारिकताएँ नहीं	कानूनी औपचारिकताओं के कारण कठिन	बहुत सी कानूनी औपचारिकताओं के कारण काफी कठिन	कुछ कानूनी औपचारिकताएँ आवश्यक
2	कानूनी हैसियत	कोई अलग कानूनी हैसियत नहीं	कोई अलग कानूनी हैसियत नहीं	अलग कानूनी हैसियत	अलग कानूनी हैसियत	अलग कानूनी हैसियत
3	सदस्यता	एक स्वामी	कम से कम 2, बैंकिंग व्यवसाय में अधिक से अधिक 10 और अन्य व्यवसायों में 20	कम से कम 2, अधिक से अधिक 50	कम से कम 7, अधिकतम कोई सीमा नहीं	कम से कम 10, अधिकतम कोई सीमा नहीं
4	पूँजी	अत्यंत सीमित पूँजी	सीमित पूँजी	अधिक पूँजी	पूँजी की कितनी भी राशि जुटाई जा सकती है	प्रचुर साधन उपलब्ध नहीं
5	प्रबंधन तथा स्वामित्व	स्वामी द्वारा प्रबंधन	स्वामियों द्वारा प्रबंधन	नियंत्रण, जोखिम तथा स्वामित्व साथ-साथ	प्रबंधन तथा स्वामित्व पूर्णतः अलग-अलग	सभी सदस्यों द्वारा प्रबंध नहीं
6	प्रबंधन कुशलता	अत्यंत सीमित प्रबंधन कुशलता	सीमित प्रबंधन कुशलता	प्रबंध कुशलता की गुंजाइश	बहुत अधिक प्रबंधन कुशलता की गुंजाइश	प्रबंधन कुशलता की गुंजाइश उपनियमों के अनुसार
7	स्वामी का दायित्व	असीमित	असीमित	सीमित	सीमित	सीमित
8	लाभ विभाजन का आधार	सारा लाभ स्वामी को प्राप्त	करार के अनुसार साझेदारों में विभाजन	स्वामियों में उनके शेयरों के आधार पर विभाजन	स्वामियों के उनके शेयरों के आधार पर विभाजन	प्रत्येक सदस्या द्वारा किए गए व्यवसाय की मात्रा
9	स्वामित्व का अंतरण	इच्छानुसार तथा अपेक्षाकृत आसान	सीमित तथा अपेक्षाकृत कठिन	सीमित तथा अपेक्षाकृत कठिन	इच्छानुसार तथा अति सुगम	सीमित
10	व्यावसायिक स्थायित्व	स्वामी के जीवन पर निर्भर	साझेदारों के जीवन, दिवालियापन तथा निवृति पर निर्भर	शाश्वत अस्तित्व, सदस्यों की मृत्यु, दिवालियापन का इसके जीवन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता	शश्वत अस्तित्व, सदस्यों की मृत्यु, दिवालियापन का इसके जीवन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता	इसके सदस्यों की मृत्यु दिवालियापन का इसके जीवन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता
11	व्यावसायिक रहस्य	पूर्ण गोपनीयता	रहस्य साझेदारों तक सीमित	रहस्य सदस्यों तक सीमित	जनता को ज्ञात	सदस्यों को ज्ञात
12	सहकारी नियमन	लगभग नहीं	बहुत कम	पर्याप्त नियमन	अत्यधिक नियमन	पर्याप्त नियमन
13	कर-भार	कोई विशेष आयकर नहीं	कोई विशेष आयकर नहीं	भारी कर-भार, आय पर दोहरा कर	भारी कर–भार, आय पर दोहरा कर	आयकर में छूट

14	लचीलापन	यह लचीला संगठन है, इसमें लिखित दस्तावेजों की आवश्यकता नहीं होती	इसे केवल सभी साझेदारों की सहमति से बदला जा सकता है। इसमें साझेदारी विलेख की आवश्यकता होती है जिसे सारे साझेदारों की सहमति से ही बदला जा सकता है।	यह लचीला संगठन है	यह एक लोचनीय संगठन है। इसके लोचहीन को बदलना कठिन है। इसे सरकार की अनुमति से बदला जा सकता है।	यह एक लोचनीय संगठन है। इसके लोचहीन को बदलना कठिन है। इसे सरकार की अनुमति से बदला जा सकता है।
15	लेखों का अंकेक्षण	आवश्यक नहीं	आवश्यक नहीं	अनिवार्य	अनिवार्य	अनिवार्य
16	समापन	इच्छानुसार	इच्छानुसार	अधिनियम के अनुसार	अधिनियम के अनुसार	अधिनियम के अनुसार

यदि आपकी तालिका 3.1 का ध्यानपूर्वक विश्लेषण करें तो स्पष्ट हो जाएगा कि संगठन के किसी भी रूप में समस्त आदर्श गुण नहीं हैं। संगठन के प्रत्येक रूप में इनमें से कुछ गुण मिल जाएँगे। प्रत्येक रूप कुछ दृष्टि से अच्छा होता है, परन्तु दूसरी दृष्टि से अच्छा नहीं होता। उदाहरणार्थ, एकल स्वामित्व तथा साझेदारी, स्थापना की सुगमता, सरकारी नियमन से मुक्ति, स्वामित्व के हित, व्यावसायिक रहस्यों की गोपनीयता आदि दृष्टि से अच्छे माने जाते हैं। किन्तु ये गुण कंपनी तथा सहकारी संगठनों में नहीं पाये जाते। सीमित देयता, पूँजी जुटाने के अवसर पेशेवर प्रबधन, जीवन की निरंतरता आदि की दृष्टि से कंपनी तथा सहकारी संगठन आदर्श माने जाते हैं। अतः संगठन के किसी भी रूप को हर प्रकार से आदर्श तथा हर स्थिति के लिए उपयुक्त मानना कठिन है।

बोध प्रश्न 1

1) व्यावसायिक संगठन के एक आदर्श रूप के गुणों की सूची बनाइये।

.....

.....

.....

.....

.....

2) बताएँ कि निम्न कथन **सही हैं** अथवा **गलत**।

i) संगठन का आदर्श रूप वह होता है जिसकी स्थापना के समय जटिल कानूनी औपचारिकताएं होती हैं। ( )

ii) असीमित देयता संगठन के एक आदर्श रूप का महत्वपूर्ण गुण है। ( )

iii) संगठन लचीला तथा व्यवसाय की बदलती हुए परिस्थितियों के लिए अनुकूल परिवर्तनीय होना चाहिये। ( )

iv) अत्याधिक सरकारी नियंत्रण को आदर्श नहीं माना जाता। ( )

v) संगठन का आदर्श रूप वह है जो व्यवसाय के स्थायित्व तथा उसके निरंतर जीवन को सुनिश्चित कर सके। ( )

vi) व्यावसायिक रहस्यों को गुप्त रखना संगठन के अच्छे रूप का आवश्यक गुण हैं। ( )

vii) संगठन का वह रूप वांछनीय होता है जिस पर अधिक कर-भार लगाया जाता है। ( )

3) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिये :

i) स्थापना की दृष्टि से ..... सबसे सुगम तथा सबसे कठिन होती है।

ii) स्वामियों की सदस्यता में सबसे अधिक तथा ..... में सबसे कम होती है।

iii) ..... में पूँजी जुटाने के अवसर बहुत सीमित होते हैं।

iv) संगठन का .....रूप आय कर से मुक्त होता है।

v) ..... रूपों में स्वामियों का दायित्व असीमित होता है।

vi) व्यावसायिक रहस्य ..... में गुप्त रहते हैं।

vii) ..... रूप में सरकारी नियमन सर्वाधिक होता है।

viii) ..... रूप में व्यावसायिक रहस्य अधिकतर गुप्त नहीं रह पाते हैं।

3.4 संगठन के चुनाव का मापदंड (Criteria for the Choice of Organisation)

चारों रूपों की तुलना करने पर हमने पाया कि उनमें से कोई भी सभी दृष्टियों से आदर्श नहीं है। इसमें से प्रत्येक रूप कुछ दृष्टियों से अच्छा है लेकिन कुछ दृष्टियों से अच्छा नहीं है। अतः संगठन के एक सर्वोत्तम रूप की तलाश ऐसी है जैसा कि एक कमीज की तलाश जो परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिए उपयुक्त हो। हो सकता है कि संगठन का कोई एक रूप एक स्थिति में तो उपयुक्त है लेकिन दूसरी स्थितियों में उपयुक्त न हो। संगठन का सर्वोत्तम रूप वह है जो किसी विशेष व्यवसाय की आवश्यकताओं को सन्तोषजनक ढंग से पूरा करता हो। चुनाव का मुख्य आधार उद्यमकर्त्ता द्वारा निश्चित किये गए उद्देश्यों की पूर्ति होता है। चूंकि उद्देश्य अलग-अलग व्यवसाय के लिए अलग-अलग होते हैं, अतः संगठन का कोई भी रूप प्रत्येक प्रकार के व्यवसाय के लिए उपयुक्त नहीं माना जा सकता। अब हम विश्लेषण करेंगे कि वे कौन से तत्व हैं जो व्यावसायिक संगठन के रूप के चुनाव में हमारी सहायता करते हैं। संगठन के चुनाव से संबंधित निर्णय व्यवसाय के दो स्तरों पर महत्वपूर्ण होता है :

क) व्यवसाय प्रारम्भ करते समय,

ख) व्यवसाय के विस्तार के समय

3.4.1 व्यवसाय प्रारम्भ करते समय मापदंड

एक नया व्यावसायिक उद्यम प्रारम्भ करते समय व्यावसायिक संगठन के उपयुक्त रूप का चुनाव अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि संगठन का रूप ही अन्ततः उद्यमकर्त्ता की शक्ति

और उत्तरदायित्व का निर्धारण करता है। चुनाव निम्नलिखित तत्वों पर निर्भर करता है।

1) **व्यवसाय की प्रकृति :** संगठन के उपयुक्त रूप का चुनाव प्रस्तावित व्यवसाय की प्रकृति पर निर्भर करता है। विभिन्न व्यवसायों की संगठनात्मक आवश्यकताएं भिन्न-भिन्न होती हैं। उदाहरणार्थ, एक बड़ी सीमेण्ट उत्पादन इकाई तथा सीमेण्ट बेचने वाली एक फुटकर दुकान के लिए संगठन का एक-सा रूप उपयुक्त नहीं हो सकता। इसी प्रकार का कपड़ा मिल के लिए उपयुक्त संगठन का एक दर्जी की दुकान के लिए उपयुक्त नहीं हो सकता।

2) **व्यवसाय का परिमाण :** व्यवसाय का अनुमानित परिमाण भी संगठन के उन उपयुक्त रूप के निर्णय को प्रभावित करता है। यदि व्यवसाय का परिमाण छोटा है, तो आपको कम पूँजी की आवश्यकता होगी तथा कम जोखिम उठाना पड़ेगा। इसी स्थिति में एकल स्वामित्व उपयुक्त हो सकता है। किन्तु, यदि व्यवसाय का परिणाम बड़ा है तो आपको अधिक पूँजी की आवश्यकता होगी और अधिक जोखिम उठाना पड़ेगा जो किसी अकेले स्वामी के लिए कठिन होगा। अतः साझेदारी अथवा कंपनी अधिक उपयुक्त मानी जाएगी।

3) **कारोबार का क्षेत्र :** कारोबार का क्षेत्र भी संगठन के रूप के चुनाव को प्रभावित करता है। यदि क्षेत्र सीमित है तथा एक विशेष इलाके में ही है तो एकल स्वामित्व संगठन का उपयुक्त रूप हो सकता है। किन्तु यदि क्षेत्र विस्तृत है तो संयुक्त स्टॉक कंपनी उपयुक्त रूप होगी।

4) **नियंत्रण की कामना :** नियंत्रण तथा पर्यवेक्षण की मात्रा भी संगठन के चुनाव का निर्धारण करेगी। यदि व्यावसायिक कार्यों पर प्रत्यक्ष नियंत्रण की कामना है तो एकल स्वामित्व अथवा साझेदारी अपनाई जानी चाहिये। यदि आप समझते हैं कि प्रत्यक्ष नियंत्रण की कोई आवश्यकता नहीं है तो संगठन का कंपनी रूप सर्वोत्तम होगा।

5) **पूँजी संबंधी आवश्यकताएँ :** संगठन का रूप व्यवसाय की पूँजी संबंधी आवश्यकताओं पर भी निर्भर होगा। ऐसा व्यवसाय जिसमें कम पूँजी की आवश्यकता है एकल स्वामित्व अथवा साझेदारी के आधार पर संगठित किया जा सकता है। किन्तु यदि वित्तीय आवश्यकताएं बहुत अधिक हैं तो संगठन का संयुक्त स्टॉक कंपनी रूप ही उचित रहेगा।

6) **जोखिम तथा देयता की मात्रा :** आप जानते हैं कि व्यावसायिक कार्यों में जोखिम होता है। यदि व्यावसायिक उद्यम के प्रवर्तक उसके जोखिम से डरते हैं तो व्यवसाय को सीमित देयता वाले संगठन के आधार पर आरम्भ करेंगे, अर्थात् वे एक कंपनी बनाएँगे। किन्तु जोखिम उठाने की क्षमता है तो वे व्यवसाय को एकल स्वामित्व अथवा साझेदारी के आधार पर संगठित कर सकते हैं।

7) **सरकारी विनियम :** आप जानते हैं सरकारी नियंत्रण और विनियम संगठन के कंपनी तथा सहकारी रूपों में अन्य दो रूपों की अपेक्षा अधिक होते हैं। अतः यदि आप बहुत अधिक सरकारी नियंत्रण तथा विनिमय नहीं चाहते तो आपको एकल स्वामित्व अथवा साझेदारी को चुनना चाहिए।

3.4.2 विस्तार के समय मापदंड

व्यवसाय में वृद्धि एक सामान्य क्रिया है। जब आपका व्यवसाय सफल होता है तो आप उसका विस्तार करने की योजना बना सकते हैं। विस्तार कार्यक्रम के निम्नलिखित आशय हो सकते हैं :

i) बड़े पैमाने पर वित्तीय साधनों की आवश्यकता

ii) आन्तरिक पुनर्गठन तथा नियंत्रण की आवश्यकता

iii) विशिष्ट सेवाओं, जैसे – संचार, लेखाविधि, विपणन आदि की आवश्यकता

iv) सरकारी नियंत्रण और विनियमों में वृद्धि

v) करदेयता में वृद्धि

vi) नियंत्रण तथा समन्वय की समस्या में वृद्धि

वास्तव में इन समस्याओं का स्वरूप वर्तमान व्यवसाय की प्रकृति तथा अपनाये गए विस्तार कार्यक्रमों के रूप पर निर्भर होगा। अपना विस्तार कार्यक्रम कार्यान्वित करने के लिए आप संगठन के वर्तमान रूप से काम चला सकते हैं, अथवा संगठन का एक नया रूप अपना सकते हैं। आप जिस किसी विकल्प को चुनें, उसे विस्तार की समस्त आवश्यकताओं को पूरा करने में समर्थ होना चाहिये। यदि आपका वर्तमान व्यवसाय एकल स्वामित्व संस्था के रूप में संगठित है तो आप एक प्रबंधक नियुक्त कर सकते हैं अथवा कोई साझेदार बना सकते हैं। यदि कोई साझेदारी फर्म है तो आप साझेदारों की संख्या बढ़ा सकते हैं, अथवा इसे प्राइवेट लिमिटेड कंपनी के रूप में परिवर्तित कर सकते हैं। इसी प्रकार, यदि वर्तमान व्यवसाय प्राइवेट कंपनी के रूप में संगठित है तो आपके पास यह विकल्प है कि आप चाहे तो पब्लिक लिमिटेड कंपनी में बदल दें अथवा न बदलें।

3.5 संगठन के रूप का चुनाव (Choice of the Form of Organisation)

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि छोटे-छोटे व्यवसाय, जैसे किराने की दुकानें, नाई की दुकान, छोटे भोजनालय तथा होटल, छोटे ऑटोवर्कशाप, लेखन सामग्री की दुकानें, मिठाई की दुकानें, ड्राइक्लीनिंग की दुकानें, जूता निर्माता और विक्रेता, बिजली तथा इलैक्ट्रॉनिक के सामान की मरम्मत करने वाली छोटी दुकानें, नाई, दर्जी, आदि प्रधानतः एकल व्यापार संगठन होते हैं। इस प्रकार के व्यवसायों के लिए संगठन के एकल स्वामित्व रूप को तरज़ीह देने के कारण बिल्कुल स्पष्ट है। वे छोटे पैमाने पर कार्य करते हैं, एक सीमित बाजार सीमित बाजार की आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं अथवा ग्राहकों या व्यापारियों की सीमित संख्या से व्यवहार करते हैं, तथा उन्हें सीमित पूँजी की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त इनमें आमने-सामने की स्थिति से निबटने के लिए स्वामियों के वैयक्तिक ध्यान की आवश्यकता होती है। प्रबन्धकीय कार्य स्वामी स्वयं ही सुगमतापूर्वक कर सकता है तथा सामान्यतः स्वामी स्वयं ही अपना मालिक तथा सक्रिय प्रबन्धक होना चाहता है।

अपेक्षाकृत बड़े पैमाने पर व्यवसाय का गठन सामान्यतः साझेदारी फर्म के रूप में किया जाता है। सेवा उद्यम जैसे ऑटोवर्कशाप, बड़े भोजनालय तथा होटल, बड़े पैमाने के फुटकर व्यापार तथा मध्यम पैमाने के औद्योगिक संगठन जैसे सामान्यतः साझेदारी के रूप में गठित किये जाते हैं। इनमें उद्यमकर्त्ता एक फर्म के साझेदार के रूप में अपनी पूँजी, कौशल तथा अनुभव, को एक साथ जुटाकर कार्य करते हैं। ऐसे उपक्रमों के आन्तरिक संगठन की देखभाल वे साझेदार करते हैं, जिसमें उपक्रम की किसी विशेष क्रिया में विशेषज्ञता प्राप्त हो।

उन उपक्रमों में जिनमें जोखिम काफी अधिक होता है तथा जिनमें मध्यम पैमाने पर कार्य होता है सामान्यतः प्राइवेट लिमिटेड कंपनी का चुनाव किया जाता है। परिवहन उपक्रम,

अवक्रय इकाइयाँ, वित्त तथा लीजिंग कंपनियाँ मध्यम पैमाने की विनिर्माण कंपनियाँ सामान्यतः प्राइवेट कंपनियों के रूप में गठित की जाती हैं। ऐसे उपक्रमों में साझेदारी फर्म की तुलना में अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है।

वर्तमान समय के बड़े पैमाने पर व्यावसायिक कार्यों के लिए पब्लिक लिमिटेड कंपनी व्यावसायिक संगठन का सबसे उपयुक्त रूप है। बड़े पैमाने विनिर्माण संयंत्र, बड़े परिवहन उपक्रम इंजीनियरी तथा इलैक्ट्रानिक कंपनियाँ, बड़े विभागीय भंडार , दुकाने आदि सामान्यतः पब्लिक लिमिटेड कंपनी के रूप में संगठित की जाती हैं। इसके मुख्य कारण हैं बड़ी मात्रा में पूँजी की आवश्यकता, तथा बड़े जोखिम का होना।

दूसरी ओर, संगठन का सहकारी रूप उस स्थिति में उपयुक्त होता है जबकि समाज के किसी एक विशेष वर्ग के हितों की रक्षा करनी हो। अतः संगठन के सहकारी रूप का उपयोग उपभोक्ताओं, उत्पादकों, कृषकों, आदि के लिये किया जाता है।

बोध प्रश्न 2

1) व्यवसाय प्रारम्भ करते समय संगठन के चुनाव को प्रभावित करने वाले तत्वों की सूची बनाइये।

.....

.....

.....

.....

.....

2) बताएँ कि निम्न कथन **सही हैं** अथवा **गलत**।

i) व्यवसाय का आकार जितना होता है, उतनी ही कम पूँजी की आवश्यकता होती हैं। ( )

ii) जब व्यवसाय का प्रत्यक्ष नियंत्रण करना हो, तब एकल स्वामित्व अथवा साझेदारी वांछनीय है। ( )

iii) संगठन के रूप के चुनाव पर व्यवसाय की प्रकृति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ( )

iv) यदि कारोबार का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो तो साझेदारी संगठन का आदर्श रूप होती है। ( )

v) यदि सीमित देयता वांछित हो, तो कंपनी उपयुक्त होती है। ( )

vi) पब्लिक लिमिटेड कंपनी के द्वारा असीमित मात्रा में जुटाना संभव होता है। ( )

vii) संगठन के कंपनी रूप में सरकारी नियमन अधिक होता। ( )

3) सही उत्तर के सामने चिन्ह (√) लगाइये।

i) एक बहुत छोटे व्यवसाय के लिये संगठन का उपयुक्त रूप है **एकल स्वामित्व / कंपनी**

ii) बड़े पैमाने पर निर्माण करने वाले व्यवसाय के लिये **साझेदारी / कंपनी** का उपयुक्त रूप है।

iii) मध्यम पैमाने के फुटकर कपड़ा व्यवसाय के लिए संगठन का उपयुक्त रूप है। **साझेदारी संगठन कंपनी।**

iv) पूँजी की छोटी राशि जुटाने के लिए **एकल स्वामित्व/सहकारी समिति** उपयुक्त हैं।

v) यदि जोखिम बहुत अधिक हो तो **साझेदारी/प्राइवेट लिमिटेड कंपनी** संगठन का उपयुक्त रूप है।

3.6 सारांश

स्थापना की सुगमता, सीमित देयता, पर्याप्त पूँजी जुटाने के अवसर, व्यावसायिक गोपनीयता बनाए रखना, लचीलापन, परिचालन में स्थायित्व, कम सरकारी नियंत्रण, कम कर-भार, उच्चतर प्रबंधन कुशलता, तथा अधिक स्वामित्व हित व्यावसायिक संगठन के आदर्श रूप के मुख्य लक्षण हैं।

संगठन के चार रूपों की तुलना से पता चलता है कि इनमें से किसी में भी सारे आदर्श लक्षण नहीं हैं। प्रत्येक रूप कुछ दृष्टियों से अच्छा है और कुछ अच्छा नहीं है। स्थापना की सुगमता, सरकारी नियंत्रण, स्वामित्व-हित, व्यावसायिक गोपनीयता तथा लचीलेपन की दृष्टि से एकल स्वामित्व तथा साझेदारी आदर्श रूप हैं। सीमित देयता, पूँजी जुटाने के अवसर, प्रबंधन क्षमता, स्थायित्व तथा परिचालन ही निरंतरता की दृष्टि से कंपनी तथा सहकारी समिति आदर्श रूप हैं।

चूँकि प्रत्येक दृष्टि से कोई भी रूप आदर्श नहीं है, अतः उद्यमकर्त्ता को अपने व्यवसाय के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए संगठन के उपयुक्त रूप का चुनाव करना पड़ता है। नया व्यवसाय प्रारम्भ करते समय संगठन के उपयुक्त रूप का चुनाव करने के लिए उद्यमकर्त्ता को व्यवसाय की प्रकृति, व्यवसाय के आकार के कारोबार के क्षेत्र, पूँजी-संबंधी आवश्यकताओं वांछित नियंत्रण की मात्रा, व्यवसाय के प्रत्याशित जीवन, तथा सहकारी नियमन के वांछित स्तर के संबंध में विचार करना पड़ता है। विस्तार के समय, स्थिति के अनुसार उद्यमकर्त्ता या तो संगठन के वर्तमान रूप से काम चला सकता है, अथवा संगठन का एक नया रूप अपना सकता है।

इस विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि छोटे व्यवसाय के लिए संगठन का सबसे उपयुक्त रूप एकल स्वामित्व है। यदि व्यवसाय अपेक्षाकृत बड़ा है, तो साझेदारी उपयुक्त रूप है। मध्यम आकार वाले व्यवसाय के लिये प्राइवेट लिमिटेड कंपनी आदर्श रूप है तथा बड़े आकार वाले व्यवसाय के लिए पब्लिक लिमिटेड कंपनी उपयुक्त है। जब समाज के किसी एक विशेष वर्ग के हितों की रक्षा करनी हो, तो सहकारी संगठन उपयुक्त होता है।

3.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

यदुकुल भूषण एवं ओ.पी. अग्रवाल : **व्यावसायिक संगठन के सिद्धांत** (नई दिल्ली : सुल्तान चंद एंड संस, 1988) अध्याय 6 खंड दो।

बी.पी. सिंह एवं टी.एन छाबड़ा : **व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध का परिचय** (इलाहबाद : किताब महल, 1988) अध्याय 6 खंड दो।

जी. एल जोशी, जी. एल. शर्मा, एल. एस सी. जोशी : **व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध** (दिल्लीः श्री महावीर बुक डिपो, 1988) अध्याय 7।

3.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

2) (i) गलत (ii) गलत (iii) सही (iv) सही (v) सही (vi) सही (vii) गलत

3) i) एकल स्वामित्व, पब्लिक लिमिटेड कंपनी

ii) पब्लिक लिमिटेड कंपनी व सहकारी समिति, एकल स्वामित्व

iii) एकल स्वामित्व

iv) सहकारी समिति

v) एकल व्यापार तथा साझेदारी

vi) एकल व्यापार तथा साझेदारी

vii) पब्लिक लिमिटेड कंपनी

viii) पब्लिक लिमिटेड कंपनी

बोध प्रश्न 2

2) (i) गलत (ii) सही (iii) गलत (iv) गलत (v)सही (vi) सही (vii) सही

3) (i) एकल स्वामित्व (ii) कंपनी (iii) साझेदारी (vi) एकल स्वामित्व (v) प्राइवेट

3.9 अभ्यास के लिए प्रश्न

1) व्यावसायिक संगठन के एक आदर्श रूप के लक्षणों की व्याख्या कीजिये। कौन-सा रूप समस्त पहलुओं से आदर्श माना जा सकता है?

2) व्यावसायिक संगठन के चारों रूपों में से किसी में भी संगठन के आदर्श रूप के समस्त लक्षण नहीं होते? विवेचन कीजिये।

3) व्यावसायिक संगठन के रूप के चुनाव का निर्णय करने वाले तत्वों की व्याख्या कीजिये।

4) आपने एक व्यवसाय प्रारंभ करने की योजना बनाई है। आप व्यवसाय के लिए संगठन के एक उपयुक्त रूप का चुनाव किस प्रकार करेंगे?

5) सब प्रकार के व्यवसायों के लिए संगठन की कंपनी रूप सबसे आदर्श रूप है। विवेचन कीजिए।

6) एक साझेदारी फर्म में अपने व्यवसाय का विस्तार करने का निर्णय लिया है, जिसके लिए अधिक पूँजी तथा विशेषज्ञता की आवश्यकता है। इसे अधिक साझेदार लेने चाहियें, अथवा अपने आपको प्राइवेट लिमिटेड कंपनी में परिवर्तित कर लेना चाहिये। उपयुक्त तर्क देते हुए अपनी सलाह दीजिये।

टिप्पणी: ये प्रश्न आपको इस इकाई को अधिक अच्छी तरह समझने में सहायक होंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयत्न कीजिए। किन्तु अपने उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

इकाई 4 वित्त जुटाने के साधन

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 वित्त की आवश्यकता तथा महत्व

4.3 वित्तीय आवश्यकताओं के प्रकार

- 4.3.1 स्थायी पूँजी तथा कार्यशील पूँजी
- 4.3.2 दीर्घकालीन पूँजी तथा अल्पकालीन पूँजी

4.4 पूँजी संरचना

- 4.4.1 स्वामित्व पूँजी
- 4.4.2 ऋण पूँजी
- 4.4.3 पूँजी संरचना किसे कहते हैं?

4.5 पूँजी जुटाने के साधन

- 4.5.1 शेयरों का निर्गमन
- 4.5.2 ऋणपत्रों का निर्गमन
- 4.5.3 वित्तीय संस्थाओं से ऋण
- 4.5.4 वाणिज्यिक बैंकों से ऋण
- 4.5.5 सार्वजनिक निक्षेप
- 4.5.6 लाभों का संचय
- 4.5.7 व्यापारिक साख
- 4.5.8 आढ़त का कार्य
- 4.5.9 विनिमय पत्रों को बट्टे पर भुनाना
- 4.5.10 ओवरड्रॉफ्ट तथा कैश क्रेडिट

4.6 सारांश

4.7 शब्दावली

4.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.10 अभ्यास के लिए प्रश्न

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात्, आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- वित्त की आवश्यकता को स्पष्ट कर सकें;
- वित्तीय आवश्यकताएँ किस-किस प्रकार की होती हैं, उनका वर्गीकरण कर सकें;
- स्वामित्व पूँजी तथा ऋण पूँजी के अंतर को स्पष्ट कर सकें;
- पूँजी संरचना के सिद्धांत का वर्णन कर सकें तथा इसके निर्धारक तत्त्वों को समझ सकें;
- वित्त एकत्र करने के विभिन्न साधनों का वर्णन कर सकें; तथा
- वित्त एकत्र करने के विभिन्न साधनों के लाभों तथा सीमाओं का मूल्यांकन कर सकें।

4.1 प्रस्तावना

पिछली इकाइयों में आपने व्यावसायिक गतिविधियों की प्रकृति, व्यवसाय के प्रकार जिसमें व्यक्तियों और व्यक्तियों के समूह तथा, जिसमें व्यावसायिक गतिविधियां संगठित होती हैं उसके विभिन्न रूपों के बारे में अध्ययन कर चुके हैं। आप जानते हैं कि व्यवसाय के विभिन्न कार्यकलापों के संचालन के लिए पर्याप्त पूँजी की आवश्यकता होती है और इसलिए किसी भी व्यावसायिक इकाई की स्थापना करने के लिए पूँजी जुटाना सबसे पहली आवश्यकता है। कोई भी व्यक्ति तब तक व्यवसाय प्रारंभ नहीं कर सकता जब तक कि व्यवसाय के विभिन्न कार्यकलापों के लिए पर्याप्त पूँजी उपलब्ध न हो। इस इकाई में आप अध्ययन करेंगे कि वित्त की आवश्यकता क्यों होती हैं तथा वित्त के स्रोत कौन-कौन से हैं। व्यवसाय की पूँजी संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए वित्त जुटाने के साधनों के बारे में भी आप इस इकाई में जानकारी प्राप्त करेंगे।

4.2 वित्त की आवश्यकता तथा महत्त्व

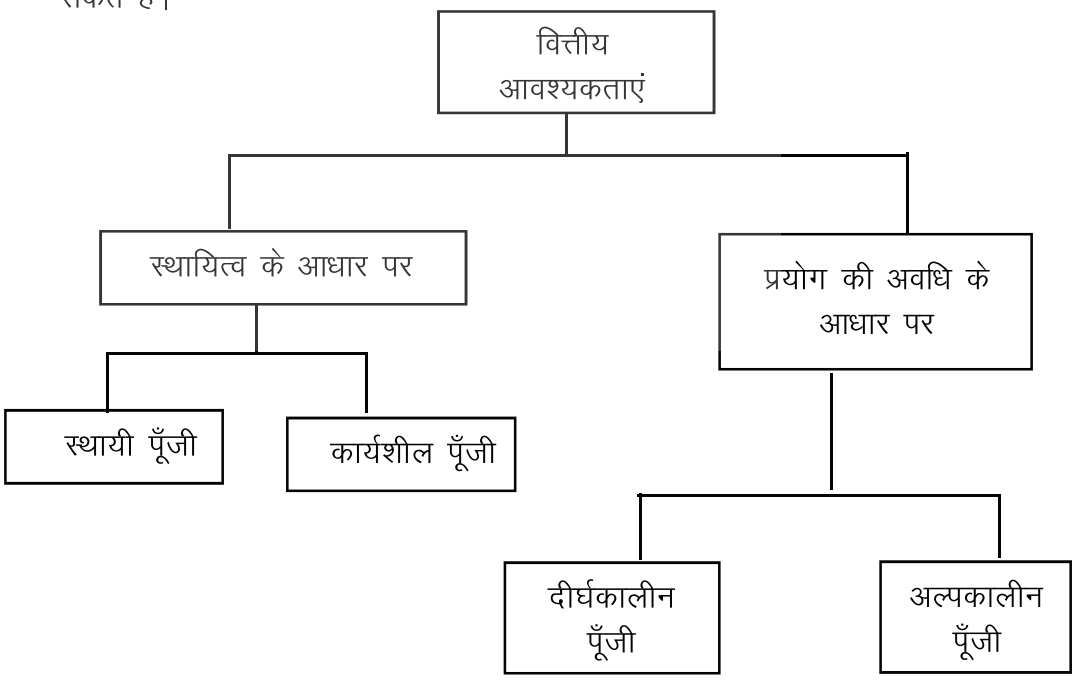
हम सब जानते हैं कि प्रत्येक व्यावसायिक कार्यकलाप के संचालन के लिए धन अथवा वित्त की आवश्यकता होती है। विनिर्माताओं को ही लीजिए। वस्तुओं के उत्पादन के लिए उनके पास स्थान होना चाहिए। उन्हें मशीनरी तथा कच्चे माल का क्रय करना होगा, श्रमिकों तथा प्रबंधकों की नियुक्ति करनी होगी, बिजली तथा जल-आपूर्ति के लिए भुगतान करना होगा तथा वस्तुओं को ग्राहकों तक पहुंचाने के लिए अन्य व्यय करने होंगे। इस प्रकार व्यापारियों को लीजिए। उन्हें वस्तुओं का क्रय करना होगा तथा उनको रखने के लिए उनके पास गोदाम होना चाहिए। उन्हें वस्तुओं को ग्राहकों तक पहुंचाने के लिए अन्य व्यय करने होंगे। इस प्रकार व्यापारियों को लीजिए। उन्हें वस्तुओं का क्रय करना होगा तथा उनको रखने के लिए उनके पास गोदाम होना चाहिए। उन्हें वस्तुओं को ग्राहकों तक पहुंचाने के लिए व्यवस्था करनी होगी। उन्हें वस्तुओं को उतारने-चढ़ाने के लिए, खाते रखने के लिए तथा बिलों की वसूली के लिए व्यक्तियों की नियुक्ति करनी होगी। एक अन्य उदाहरण वस्तु-परिवहन व्यवसाय का लीजिए। परिवहनकर्त्ता को ट्रकों का क्रय करना होगा, चालकों तथा सहायकों की नियुक्ति करनी होगी, वाहनों की मरम्मत, डीजल, रखरखाव आदि से संबंधित व्यय करने होंगे तथा इसी प्रकार अन्य कार्य भी करने होंगे। ये सभी कार्य केवल वित्त की सहायता से ही संपन्न किए जा सकते हैं। इस प्रकार सभी प्रकार के व्यावसायिक कार्यकलापों के लिए धन की आवश्यकता होती है, चाहे वह विनिर्माण व्यवसाय हो, व्यापारिक व्यवसाय हो, अथवा अन्य किसी प्रकार का व्यवसाय हो। यह सही है कि व्यवसाय द्वारा आय तभी अर्जित की जाती है जब वस्तुओं का विक्रय किया जाता है अथवा सेवाएं प्रदान की जाती हैं। लेकिन वस्तुओं का विक्रय बाद में होता है। वस्तुओं के विक्रय से पहले उनका उत्पादन अथवा क्रय होना चाहिए। अतः आय अर्जित करने से पहले वित्त की व्यवस्था करना आवश्यक होता है। कारखाने के निर्माण के लिए, मशीनरी तथा कच्चे माल के क्रय के लिए व्यवसाय के कार्यालय हेतु स्थान किराये पर लेने के लिए धन की आवश्यकता होती है। अतः पर्याप्त वित्त जुटाए बिना कोई भी व्यक्ति व्यवसाय का संचालन नहीं कर सकता। यह सही है कि ऐसा भविष्य में आय अर्जित करने की आशा तथा इस मान्यता के आधार पर ही किया जाता है कि ग्राहक प्रस्तुत की गयी वस्तुओं और सेवाओं का क्रय करेंगे।

किसी भी व्यवसाय का संचालन करने के लिए वित्त के अतिरिक्त श्रमशक्ति, कच्चे माल, मशीनरी तथा प्रबंधन की आवश्यकता होती है। परन्तु वित्त को व्यवसाय की अत्यंत महत्वपूर्ण आवश्यकता माना जा सकता है। श्रमशक्ति, कच्चा माल, मशीनरी तथा प्रबंधकों

आदि को एकत्र करके व्यवसाय में तभी लगाया जा सकता है जबकि आपके पास पर्याप्त वित्त उपलब्ध हो। बहुत सी व्यावसायिक फर्में केवल इसलिए असफल हो गयीं क्योंकि उनके पास वित्त की कमी थी। आधुनिक युग में वित्त का महत्व दो कारणों से बढ़ गया है – (1) आजकल व्यावसायिक कार्यकलाप पहले की अपेक्षा काफी बड़े पैमाने पर किए जाते हैं। यदि प्रारंभ में व्यवसाय को छोटे पैमाने पर शुरू किया जाता है तो भी समय के साथ-साथ इसका विस्तार हो जाता है। इस प्रकार उसके विस्तार के साथ-साथ वित्त की आवश्यकता में भी वृद्धि होती है। (2) विनिर्माण प्रतिक्रियाएं पहले की अपेक्षा अधिक जटिल हो गयी हैं। कारखाने में उत्पादन के लिए अधिक लागत वाली मशीनों, उपस्करों तथा औजारों की आवश्यकता होती है तथा अधिक व्यक्तियों को काम पर लगाना पड़ता है। सामग्री का क्रय तथा भंडारण भी बड़ी मात्रा में करना पड़ता है। उत्पादों का व्यापक विज्ञापन होना चाहिए। थोक व्यापारियों, अन्य व्यापारियों तथा विक्रेताओं के माध्यम से उत्पादों के वितरण की व्यवस्था की जानी चाहिए। इस प्रकार व्यवसाय के आकार तथा विस्तार में वृद्धि के साथ-साथ तथा उत्पादन और व्यापार की जटिलता में वृद्धि के कारण वित्त की आवश्यकता में भी वृद्धि हुई है। किसी भी दूसरी तरफ हो सकता है कि किसी निश्चित अवधि में विक्रय से प्राप्त नकद रकम उस अवधि में किए गए व्यय की रकम के बराबर न हो। इसलिए जब भी वित्त की आवश्यकता हो तभी वह पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होना चाहिए। किस समय कितने वित्त की व्यवस्था करनी होगी इसका पूर्वानुमान करना कोई सरल कार्य नहीं है क्योंकि समय के साथ-साथ व्यवसाय की परिस्थितियों में भी परिवर्तन होता रहता है।

4.3 वित्तीय आवश्यकताओं के प्रकार

व्यापक रूप से व्यवसाय की वित्तीय आवश्यकता को वर्गीकृत करने के दो तरीके हैं – (1) स्थायित्व की मात्रा के आधार पर हम वित्तीय आवश्यकताओं को (अ) स्थायी पूँजी (Fixed Capital) तथा (ब) कार्यशील पूँजी (Working Capital) में वर्गीकृत कर सकते हैं। (2) प्रयोग की अवधि के आधार पर हम वित्तीय आवश्यकताओं को (अ) दीर्घकालीन पूँजी (Long-term Capital) तथा (ब) अल्पकालीन पूँजी (Short-term Capital) में वर्गीकृत कर सकते हैं।



चित्र 4.1 : वित्तीय आवश्यकताओं का वर्गीकरण

4.3.1 स्थायी पूँजी तथा कार्यशील पूँजी

स्थायी पूँजी : प्रत्येक व्यावसायिक प्रतिष्ठान में धन का निवेश कुछ स्थायी अथवा टिकाऊ परिसंपत्तियों में किया जाता है, जैसे भूमि, भवन, मशीनरी, उपस्कर, फर्नीचर आदि। इन परिसंपत्तियों की आवश्यकता स्थायी उपयोग के लिए अर्थात् एक लंबे समय के लिए होती है। इन परिसंपत्तियों, के क्रय के लिए आवश्यक धन को **स्थायी पूँजी अथवा दीर्घकालीन पूँजी** कहा जाता है। आवश्यक स्थायी पूँजी की मात्रा साधारणतया व्यवसाय के स्वरूप एवं आकार पर निर्भर करती है। विनिर्माण कार्यकलापों के लिए, जो विशेषकर भारी इंजीनियरी, विद्युत उद्योग, परिवहन, जहाजरानी तथा जहाज निर्माण, विद्युत आपूर्ति, लौह इस्पात विनिर्माण, स्वचालित वाहन आदि उद्योगों में संलग्न हैं, संयंत्र एवं मशीनरी, उपस्कर, कारखाने के भवन, भंडारगृहों आदि में अत्याधिक निवेश की आवश्यकता होती है। इसके विपरीत व्यापारिक संस्थानों में स्थायी परिसंपत्तियों के लिए अपेक्षाकृत कम निवेश की आवश्यकता होती है।

स्थायी परिसंपत्तियों में निवेश के लिए धन की एक लंबे समय तक के लिए आवश्यकता होती है। ये स्थायी परिसंपत्तियों में पैसा लगाने के बाद उसे वापस नहीं निकला जा सकता और न ही किसी अन्य कार्य में लगाया जा सकता है।

कार्यशील पूँजी : व्यवसाय में आपको कई कार्यों के लिए वित्त की आवश्यकता होती है, जैसे कच्चे माल के क्रय के लिए, मजदूरी, वेतन, किराया, ईंधन, बिजली, पानी आदि के भुगतान के लिए, मशीनरी के रख-रखाव तथा मरम्मत के लिए तथा विज्ञापन आदि के लिए। इस सब उद्देश्यों की पूर्ति के लिए थोड़े-थोड़े समय के अंतराल पर भी वित्त की आवश्यकता उत्पन्न होती है। व्यावसायिक कार्यकलापों के निष्पादन के लिए यह भी आवश्यक है कि हम कच्चे माल, स्पेयर पार्टों, अन्य सामग्री तथा निर्मित वस्तुओं का पर्याप्त भंडार रखें। इसके लिए कच्चे माल, स्पेयर पार्टों, अन्य सामग्री, निर्मित वस्तुओं आदि के भंडार के रूप में अल्पकालिक अथवा चालू परिसंपत्तियों में निवेश की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त वस्तुओं के उधार विक्रय से देनदारों के शेष तथा प्राप्य विनिमय-पत्रों के रूप में भी धन का निवेश हो जाता है जिन्हें चालू परिसंपत्तियां ही माना जाना चाहिए।

चालू परिसंपत्तियों जैसे कच्चे माल, निर्मित वस्तुओं आदि के स्टॉक में देनदारों के शेष और प्राप्य विनिमय पत्रों (बिलों) में लगाया गया पैसा कार्यशील पूँजी कहलाता है। कई बार इसे प्रचल पूँजी (Circulating Capital) या परिक्रामी पूँजी (Revolving Capital) भी कहा जाता है। इसका कारण यह है कि चालू परिसंपत्तियों में निवेशित पैसा रोकड़ वसूली के रूप में निरंतर पुनः निवेश कर दिया जाता है। इस प्रकार उस रकम का रोकड़ से चालू परिसंपत्तियों में तथा फिर वापस चालू परिसंपत्तियों से रोकड़ में निरंतर परिवर्तन होता रहता है। यद्यपि ऐसा थोड़े-थोड़े समय के अन्तराल पर होता है लेकिन रकम की आवश्यकता बार-बार होती रहती है। अतः इस कार्य के लिए आवश्यक रकम का एक भाग स्थायी प्रकृति का होता है। इसे कार्यशील पूँजी का ''स्थायी अथवा शाश्वत'' भाग कहा जाता है। कार्यशील पूँजी के शाश्वत भाग को दीर्घकालीन पूँजी माना जाना चाहिए। कार्यशील पूँजी का दूसरा भाग व्यवसाय के आकार में वृद्धि अथवा कमी के साथ-साथ परिवर्तित होता रहता है। अतः इसे कार्यशील पूँजी का ''अस्थिर अथवा परिवर्तनशील'' भाग कहा जाता है। इसलिए कार्यशील पूँजी का केवल परिवर्तनशील भाग ही अल्पकालिक पूँजी माना जाता है, जिसके लिए आवश्यक रकम की अवधि एक वर्ष से भी कम होती है। आवश्यक कार्यशील पूँजी की मात्रा मुख्य रूप से व्यवसाय की प्रकृति, विनिर्माण प्रक्रिया पूर्ण होने की अवधि तथा उन शर्तों पर निर्भर करती है जिन वस्तुओं का क्रय तथा विक्रय किया जाता है। उदाहरण के लिए, व्यापारिक कंपनियों को विनिर्माण कंपनियों की अपेक्षा अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता

होती है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि व्यापारिक व्यवसाय को बड़ी मात्रा में वस्तुओं का भंडार रखना पड़ता है तथा देनदारों के शेष भी अधिक होते हैं। निर्माण (Construction) कंपनियों को भी विनिर्माण (Manufacturing) कंपनियों की अपेक्षा अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है। इन दोनों के व्यवसायों में चालू परिसंपत्तियों का मूल्य कुल परिसंपत्तियों के मूल्य का लगभग 80 से 90 प्रतिशत तक होता है। होटलों और जलपान गृहों के लिए चालू परिसंपत्तियों में अपेक्षाकृत कम निवेश की आवश्यकता होती है क्योंकि उनमें अधिकतर नकद विक्रय होता है तथा देनदारों के शेष की रकम भी बहुत कम होती है।

विनिर्माण उद्योगों में उत्पादन प्रक्रिया में लगने वाले समय की भिन्नताओं के कारण कार्यशील पूँजी की आवश्यकताएं भी भिन्न-भिन्न होती हैं। ये आवश्यकताएं कच्चे माल के क्रय तथा निर्मित माल के उत्पादन के बीच के समय अन्तराल के आधार पर निर्धारित होती हैं। प्रक्रिया की अवधि जितनी लम्बी होगी, कार्यशील पूँजी की आवश्यकता भी उतनी ही अधिक होगी। उदाहरण के लिए, चावल मिल अथवा सूत कातने की मिल अथवा इस्पात बनाने की की मिल की अपेक्षा एक भारी इंजीनियरी उद्योग को अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है।

एक और कारण जिसके आधार पर कार्यशील पूँजी की मात्रा का निर्धारण होता है वह ग्राहकों को दिए जाने वाले उधार की शर्तों से संबंधित है। उदाहरण के लिए, एक कंपनी अपने ग्राहकों को केवल 51 दिन की साख पर माल उधार बेचती है, जबकि दूसरी कंपनी 90 दिन की साख पर माल उधार बेच सकती है। एक कंपनी इतनी उदार हो सकती है कि वह अपने सभी ग्राहकों को साख संबंधी सुविधाएं प्रदान कर देती है, जबकि उसी व्यवसाय में लगी एक दूसरी कंपनी केवल कुछ चुने हुए विश्वसनीय ग्राहकों को ही साख संबंधी सुविधाएं प्रदान करती है। यह स्वाभाविक है कि यदि साख की अवधि लंबी है तथा सभी ग्राहकों को साख संबंधी सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं, तो अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होगी। इन दोनों ही अवस्थाओं में देनदारों के शेष भी अधिक होंगे जिनके लिए कार्यशील पूँजी की आवश्यकता भी अधिक होगी। दूसरी ओर यदि माल की आपूर्ति साख की अनुकूल शर्तों पर उपलब्ध हो जाती है, अर्थात् उनके लिए भुगतान लंबे समय के अन्तराल पर किया जा सकता है तो कार्यशील पूँजी की आवश्यकता भी उसी के अनुसार कम होगी।

4.3.2 दीर्घकालीन पूँजी तथा अल्पकालीन पूँजी

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, स्थायी परिसंपत्तियों में निवेश के लिए वित्त की व्यवस्था स्थायी दीर्घकालीन पूँजी द्वारा की जानी चाहिए। इसका कारण यह है कि स्थायी परिसंपत्तियां काफी लंबे समय की अवधि के दीर्घकालीन उपयोग के लिए ही खरीदी जाती हैं जो सामान्यतः पांच वर्ष अथवा उससे भी अधिक वर्षों का हो सकता है। कार्यशील पूँजी के स्थायी भाग के लिए भी दीर्घकालीन पूँजी की आवश्यकता होती है। दूसरी ओर चालू परिसंपत्तियों में निवेश के लिए तथा दिन-प्रतिदिन के खर्चों का भुगतान करने के लिए पूँजी की आवश्यकता साधारणतया अल्प समय के लिए ही होती है, जो एक वर्ष से भी कम का होता है। इसका कारण यह है कि कच्चे माल का उपयोग तथा निर्मित वस्तुओं का विक्रय साधारणतया एक वर्ष के भीतर ही कर लिया जाता है तथा ग्राहकों से प्राप्य रकम भी साधारणतया तीन से छह महीनों के भीतर ही कर ली जाती है। दीर्घकालीन पूँजी तथा अल्पकालीन पूँजी में मुख्य अंतर यह है कि दीर्घकालीन पूँजी की आवश्यकता एक लंबी अवधि के लिए होती है जो पांच वर्ष अथवा इससे भी अधिक वर्षों की हो सकती है, जबकि अल्पकालीन पूँजी की आवश्यकता थोड़े समय के लिए होती है जो एक वर्ष से भी कम का

होता है। पूँजी की इन आवश्यकताओं के अतिरिक्त भी व्यावसायिक संस्थाओं को दो से पांच वर्षों की अवधि के लिए धन की आवश्यक होती है जिसे मध्य कालीन पूँजी (Medium-term Capital) कहा जाता है। मध्य कालीन पूँजी की आवश्यकता कुछ निश्चित कार्यकलापों के लिए होती है जैसे भवन का नवीनीकरण, मशीनरी का आधुनिकीकरण, विज्ञापन पर भारी व्यय आदि।

4.4 पूँजी संरचना (Capital Structure)

दीर्घकालीन तथा अल्पकालीन पूँजी की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया गया धन 'स्वामित्व पूँजी' अथवा 'ऋण पूँजी' का रूप ले सकता है। 'पूँजी संरचना' का अध्ययन करने से पहले हम इन दो शब्दों का अर्थ भली-भांति समझ लें।

4.4.1 स्वामित्व पूँजी

किसी व्यवसाय में व्यवसाय के स्वामियों द्वारा निवेशित पूँजी को स्वामित्व पूँजी (Ownership Capital) कहा जाता है। व्यवसाय के स्वामियों को उनके द्वारा किए गए निवेश के आधार पर ही व्यवसाय का लाभ प्राप्त करने का अधिकार होता है। एकल स्वामित्व व्यवसाय में साधारणतया एकल स्वामी अपनी बचत से ही पूँजी का निवेश करता है। साझेदारी व्यवसाय में साझेदारों की आपसी सहमति के आधार पर प्रत्येक साझेदार पूँजी की राशि लाता है। कंपनियों शेयरों के निर्गमन द्वारा पूँजी प्राप्त करती हैं। जो निदेशक किसी कंपनी की शेयर पूँजी में अंशदान करते हैं वे अपनी शेयर-धारिता (Share holding) के बल पर उस कंपनी के स्वामी भी बन जाते हैं। शेयर होल्डर कंपनी द्वारा अर्जित किए गए लाभांशों में से ही लाभांश (dividend) प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं। जब तक कंपनी को लाभ नहीं होता तब तक स्वामी अपने निवेश पर प्रतिफल प्राप्त करने का दावा नहीं कर सकते। स्वामियों के निवेश पर प्रतिफल की दर अर्जित लाभ की मात्रा पर निर्भर करती है। यह दर ऊंची भी हो सकती है और नीची भी। यदि कंपनी को कोई लाभ नहीं होता तो स्वामियों को भी कोई लाभांश नहीं दिया जाता। इस प्रकार नुकसान तथा प्रतिफल की कम दर का जोखिम, स्वामित्व पूँजी के साथ जुड़ा हुआ होता है। इसीलिए इसे जोखिम पूँजी भी कहा जाता है।

स्वामित्व पूँजी का उपयोग स्थायी परिसंपत्तियों तथा चालू परिसंपत्तियों दोनों में ही निरंतर निवेश के लिए किया जा सकता है। स्वामित्व पूँजी का उपयोग साधारणतया स्थायी पूँजी अथवा दीर्घकालीन पूँजी के रूप में किया जाता है। जोखिम वहनकर्त्ता के रूप में स्वामियों को यह आश्वासन नहीं होता कि उन्हें निवेश पर पर्याप्त प्रतिफल प्राप्त होगा अथवा नहीं। लेकिन यदि व्यवसाय सफल हो जाता है तो उन्हें बहुत अधिक प्रतिफल प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त स्वामियों को व्यवसाय के प्रबंधन में भी भाग लेने का अधिकार होता है। एकल स्वामित्व को व्यवसाय में स्वयं स्वामी तथा साझेदार व्यवसाय के संचालन में सक्रिय भूमिका निभाते हैं। कंपनियों के शेयरहोल्डर प्रत्यक्ष रूप से व्यवसाय का प्रबंधन नहीं करते। वे निदेशक मंडल के सदस्यों का चुनाव करते हैं जो शेयरहोल्डर की ओर से कंपनी का प्रबंध करते हैं।

4.4.2 ऋण पूँजी

कई बार व्यवसाय की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति ऋण प्राप्त करके की जाती है। ऋणों पर एक निश्चित दर से कुछ समय के अन्तराल पर नियमित रूप से ब्याज देना पड़ता है, जैसे वार्षिक अथवा अर्धवार्षिक। व्यवसाय की तरफ से इसके लिए भी वचनबद्धता होती है कि मूल रकम नियत समय पर लौटा दी जाएगी। इस प्रकार यदि 10, 15 अथवा 20 वर्षों के लिए ऋण लिया जाता है तो इसका भुगतान उस अवधि की समाप्ति पर अथवा ऋण

की शर्तों में उल्लिखित अन्तराल के पश्चात् करना होगा। ऋण पर ब्याज एक स्थायी व्यय है तथा इसका भुगतान तो करना ही पड़ता है, चाहे आय हुई हो अथवा नहीं। इस प्रकार धन उधार लेने से ब्याज का भुगतान करना तथा देय होने पर मूल रकम का भुगतान करना एक स्थायी रूप से उत्तरदायित्व बन जाता है।

धन अल्पकालीन तथा दीर्घकालीन दोनो ही उद्देश्यों के लिए अर्थात् स्थायी परिसंपत्तियों तथा चालू परिसंपत्तियों दोनों में ही निवेश के लिए उधार लिया जा सकता है। एकल स्वामित्व व्यवसाय में स्वामी व्यक्तिगत जमानत पर अथवा वर्तमान परिसंपत्तियों की जमानत पर धन उधार ले सकता है। साझेदारी संगठन साझेदारों की व्यक्तिगत जमानत पर ऋण ले सकता है जिससे साझेदार संयुक्त रूप से तथा व्यक्तिगत रूप से उत्तदायी बन जाते हैं। कंपनियां भी ऋणपत्र (Debentures) या बॉण्ड निर्गमित करे अथवा प्रत्यक्ष रूप से ऋण प्राप्त करके धन उधार ले सकती हैं।

यदि व्यवसाय की आय स्थिर है तथा देनदारों से नियमित रूप से रोकड़ प्राप्त कर ली जाती है तो ऋण प्राप्त करना कठिन नहीं होता। लेकिन यदि परिस्थितियां ऐसी हैं कि जब ब्याज देय होता है तब उसका भुगतान करना संभव नहीं हो पाता तो इसके गंभीर परिणाम हो सकते हैं इससे साख क्षमता की हानि होती है अर्थात् संभव है कि माल के विक्रेता और अधिक उधार माल देने के लिए तैयार न हों तथा और ऋण भी प्राप्त न हो। इससे भी अधिक गंभीर बात यह हो सकती है कि ऋणदाता तथा लेनदार देय रकम की प्राप्ति के लिए कानूनी कार्रवाई शुरू कर दे। इसलिए ब्याज चुकाने तथा मूल रकम को समय पर लौटाने के उत्तरदायित्व को पूरा करने की क्षमता के बिन धन उधार लेना वांछनीय नहीं होता।

लेकिन व्यावसायिक कार्यकलापों में निवेश के लिए ऋण द्वारा धन जुटाने के लिए कुछ लाभ भी हैं। यदि व्यवसाय लाभप्रद है तो ब्याज एक स्थायी व्यय होने के कारण स्वामियों के निवेश पर प्रतिफल काफी अधिक होगा। मान लीजिए कि व्यवसाय में कुल निवेश 1,00,000 रुपये है जिसमें से 40,000 रुपये स्वामियों द्वारा दिए गए हैं तथा शेष 60,000 रुपये ऋण द्वारा प्राप्त किए गए हैं जिस पर 15 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज देना है। वर्ष के दौरान 30,000 रुपये का लाभ अर्जित किया गया । देय ब्याज की कुल रकम 9,000 रु. होगी। इसलिए ब्याज के भुगतान के पश्चात् लाभ की रकम 21,000 रु. होगी। मान लीजिए कि लाभ पर 50 प्रतिशत की दर से कर चुकाया जाता है। अतः देय कर की रकम 10,500 रु. होगी। स्वामी की पूँजी पर प्रतिफल कितना होगा? 40,000 रु. की स्वामी की पूँजी पर प्रतिफल होगा 10,500 रु. अर्थात् प्रतिफल की दर 26.25 प्रतिशत होगी। यदि स्वामियों ने 1,00,000 रु. का निवेश किया होता तथा कोई ऋण नहीं लिया होता तब भी क्या प्रतिफल की दर इतनी ही होती? स्पष्टतः नहीं। आइए, हम इसकी जांच करें। क्योंकि ऐसी स्थिति में कोई ब्याज नहीं दिया जाएगा, इसलिए कर की रकम 15,000 रु. होगी (30,000 रु. पर 50 प्रतिशत की दर से), कर चुकाने के बाद निवल लाभ 15,000 रु. होगा (30,000 रु. कुल लाभ – 15,000 रु. कर)। स्वामियों के 1,00,000 रु. के निवेश पर उन्हें 15,000 रु. का प्रतिफल प्राप्त होगा अर्थात् प्रतिफल की दर 15 प्रतिशत होगी। आपने देखा होगा कि जब कुल निवेश का एक भाग ऋण द्वारा प्राप्त किया गया था तब स्वामियों के प्रतिफल की दर अधिक थी। यदि आप सावधानीपूर्वक इसकी जांच करें तो आप देखेंगे कि यह दो प्रभावों के कारण संभव हुआ – (1) देय कर की रकम कम थी (15,000 रु. के स्थान पर 10,500 रु.)। इस प्रकार के भुगतान के बाद शुद्ध लाभ अधिक था। (2) ब्याज के भुगतान की रकम निश्चित थी इस प्रकार ऋणों से व्यवसाय के विस्तार में तो सहायता मिली किन्तु इसके लिए ऋणदाताओं को ब्याज के अतिरिक्त कुछ भी अधिक भुगतान नहीं करना पड़ा। लाभ का शेष भाग पूर्णतः स्वामियों के लिए बच गया। स्वामियों के निवेश पर प्रतिफल की एक

ऊंची दर का लाभ प्राप्त करने के लिए ऋण पूँजी के उपयोग को ''इक्विटी पर व्यापार'' (Tranding on Equity) कहा जाता है।

4.4.3 पूँजी संरचना किसे कहते हैं?

आपने ध्यान दिया होगा कि जब लाभ अधिक होता है ऋण लेना वांछनीय होता है लेकिन यदि लाभ कम हो रहा हो तब ऋणों पर निर्भर करना खतरनाक हो सकता है। अतः प्रश्न यह उठता है कि ऐसी अवस्था में व्यावसायिक कार्यकलापों के लिए ऋण की मात्रा कितनी होनी चाहिए। उसके लिए सामान्य नियम यह होना चाहिए कि ऋण पूँजी तथा स्वामित्व पूँजी दोनों को ही एक उचित अनुपात में रखा जाए। एक अत्यधिक सफल व्यससाय में अनुकूल परिथितियों में ऋण पूँजी स्वामियों के निवेश से दो गुनी अथवा तीन गुनी भी हो सकती है। लेकिन एक ऐसे व्यवसाय में जिसका लाभ निरंतर गिरता जा रहा हो, ऋण पूँजी का अनुपात जितना कम हो सके उतना कम होना चाहिए।

चूंकि ऋण लेने के कुछ विशिष्ट लाभ होते हैं, इसलिए प्रवर्तक यथा संभव अधिकाधिक रकम ऋण द्वारा प्राप्त करना चाहेंगे। लेकिन एक सीमा के पश्चात् ऋण लेना भी जोखिम भरा हो सकता है। इसका कारण यह है कि आय में अस्थिरता और उपलब्ध रोकड़ की अपर्याप्तता के कारण एक ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है कि व्यवसाय के लिए ब्याज चुकाना तथा ऋण की मूल रकम लौटाना भी संभव न हो। ऐसी स्थिति में माल के विक्रेता तथा लेनदार व्यवसाय की वित्तीय स्थिति को अविश्वसनीय मानेंगे। हो सकता है कि वे व्यवसाय को माल उधार देना ही बन्द कर दें तथा ऐसी अत्यन्त विषम परिस्थिति में व्यवसाय दिवालिया भी हो सकता है। यह खतरा मूलतः आय अथवा लाभ की पर्याप्तता पर विचार किए बिना ही व्यवसाय द्वारा ऋण पूँजी पर किए जाने वाले स्थायी भुगतानों का उत्तरदायित्व ले लेने के कारण तथा उपलब्ध रोकड़ की कमी के कारण उत्पन्न होता है।

कुल पूँजी में उस पूँजी का अनुपात जिस पर स्थायी ब्याज देना होता है ''पूँजी का मिलान'' (Capital gearing) कहलाता है। इस प्रकर यदि ऋण पूँजी का अनुपात स्वामित्व पूँजी की अपेक्षा काफी अधिक है तो इसे पूँजी का उच्च मिलान (High gearing) कहा जाता है। इसके विपरीत पूँजी का निम्न मिलान (Low gearing) स्वामित्व पूँजी की अपेक्षा ऋण पूँजी के कम अनुपात को प्रकट करता है। कुल पूँजी की ऐसी बनावट को ''पूँजी संरचना'' (Capital Structure) कहते हैं जिसका एक भाग दीर्घकालीन कोष के रूप में हो जिस पर स्थायी ब्याज देना हो तथा एक भाग स्वामित्व पूँजी के रूप में हो। इस प्रकार पूँजी संरचना से तात्पर्य उस अनुपात से होता है जिसमें कुल वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दीर्घकालीन वित्त के विभिन्न साधनों का उपयोग किया जाता है। जैसे ऋणपत्र एवं दीर्घकालीन ऋण, पूर्वाधिकार शेयर पूँजी और इक्विटी पूँजी (जिसमें आरक्षित कोष तथा अधिशेष भी शामिल होते हैं)।

बोध प्रश्न 1

1) बताइए कि निम्नलिखित कथनों में से कौन से कथन **सत्य हैं** तथा कौन से **असत्य**।

   i) व्यवसाय में अधिक वित्त की आवश्यकता केवल इसलिए होती है कि मजदूर लोग हमेशा अधिक मजदूरी की मांग करते हैं। ( )

   ii) वित्त के बिना कोई भी व्यक्ति व्यवसाय को नहीं चला सकता। ( )

   iii) कच्चे माल के क्रय के लिए स्थायी पूँजी की आवश्यकता होती है। ( )

   iv) व्यापारिक कंपनियों की अपेक्षा विनिर्माण कंपनियों को अधिक स्थायी पूँजी की आवश्यकता होती है। ( )

v) स्थायी परिसंपत्तियों तथा चालू परिसंपत्तियों दोनों में ही दीर्घकालीन निवेश की आवश्यकता होती है। ( )

vi) पूँजी का उच्च मिलान अधिक ऋण पूँजी द्वारा वित्त प्राप्त करने का सूचक है। ( )

vii) कार्यशील पूँजी के स्थायी भाग को दीर्घकालीन वित्त माना जा सकता है। ( )

viii) उन व्यापारियों को कार्यशील पूँजी की आवश्यकता नहीं होती जो वस्तुओं का उधार क्रय तथा उधार विक्रय करते हैं। ( )

ix) एक लाभदायक व्यवसाय में यदि कुल पूँजी का कुछ भाग ऋण द्वारा प्राप्त किया जाता है तो स्वामित्व पूँजी पर प्रतिफल अधिक मिलेगा। ( )

2) उपयुक्त शब्दों से रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

i) स्वामित्व पूँजी को ..... पूँजी भी कहा जाता है।

ii) ..... पूँजी को कभी-कभी परिक्रामी अथवा प्रचल पूँजी भी कहा जाता है।

iii) पांच वर्ष अथवा इससे अधिक वर्षों के लिए आवश्यक कोष को .... वित्त माना जाता है।

iv) अल्पकालीन वित्त की आवश्यकता ..... वर्ष तक की अवधि के लिए होती है।

v) मध्यकालीन वित्त की आवश्यकता ..... वर्ष की अवधि के लिए होती है।

vi) व्यापारिक कंपनियों को ..... पूँजी की अपेक्षा अधिक कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है।

vii) चालू परिसंमपत्तियों में निवेश का अभिप्राय साधारणतया ..... निवेश से होता है।

viii) दीर्घकालीन तथा ..... दोनों की प्रयोजनों के लिए ही ऋण प्राप्त किए जा सकते हैं।

3) कॉलम 'क' में मदों का कॉलम 'ख' की मदों से मिलान कीजिए :

कॉलम 'क'	**कॉलम 'ख'**
1) स्थायी पूँजी	i) चालू परिसंपत्तियां
2) दीर्घकालीन वित्त	ii) अल्पकालीन वित्त
3) मध्यकालीन वित्त	iii) जोखिम पूँजी
4) पूँजी संरचना	iv) टिकाऊ परिसंपत्तियां
5) कार्यशील पूँजी	v) पांच वर्ष से अधिक समय के लिए
6) स्वामित्व पूँजी	vi) मशीनरी का आधुनिकीरण
7) प्राप्य बिल	vii) ऋण पूँजी तथा इक्विटी पूँजी

4.5 पूँजी जुटाने के साधन

आप समझ गए हैं कि विभिन्न कारणों, उद्देश्यों तथा कार्यकलापों के लिए बहुत अल्पकाल से लेकर काफी लंबे समय तक की अवधि के लिए वित्त की आवश्यकता होती है। वित्तीय आवश्यकताओं की कुल रकम व्यवसाय के आकार एवं स्वरूप पर निर्भर करती है। धन एकत्र करने का क्षेत्र उन स्रोतों पर निर्भर करता है जिनसे वह उपलब्ध हो सकता है। एकल स्वामित्व संगठन के स्वामी के लिए वित्त एकत्र करने के साधन बहुत सीमित होते हैं। वह अपने व्यवसाय के लिए निम्नलिखित साधनों में से किसी भी साधन से वित्त प्राप्त कर सकता है :

- स्वयं की बचत का निवेश
- मित्रों तथा संबंधियों से ऋण
- वाणिज्यिक बैंकों से अग्रिम रकम की व्यवस्था
- वित्त कंपनियों से ऋण

साझेदारी फर्मों को भी वित्त प्राप्त करने के ये ही साधन उपलब्ध होते हैं। इन दोनों प्रकार के व्यावसायिक संगठनों में दीर्घकालीन पूँजी साधारणतया इनके मालिकों द्वारा अर्थात् एकल स्वामी अथवा साझेदारी द्वारा जुटाई जाती है। स्थायी पूँजी भी स्वामियों की व्यक्तिगत जमानत पर मित्रों तथा संबंधियों से ऋण के रूप में प्राप्त की जा सकती है। साधारणतया अल्पकालीन कार्यशील पूँजी से संबंधित आवश्यकताएं आंशिक रूप से व्यापारिक लेनदारों (माल तथा वस्तुओं के विक्रेताओं) तथा वित्तीय कंपनियों के ऋण प्राप्त करके पूरी की जाती हैं।

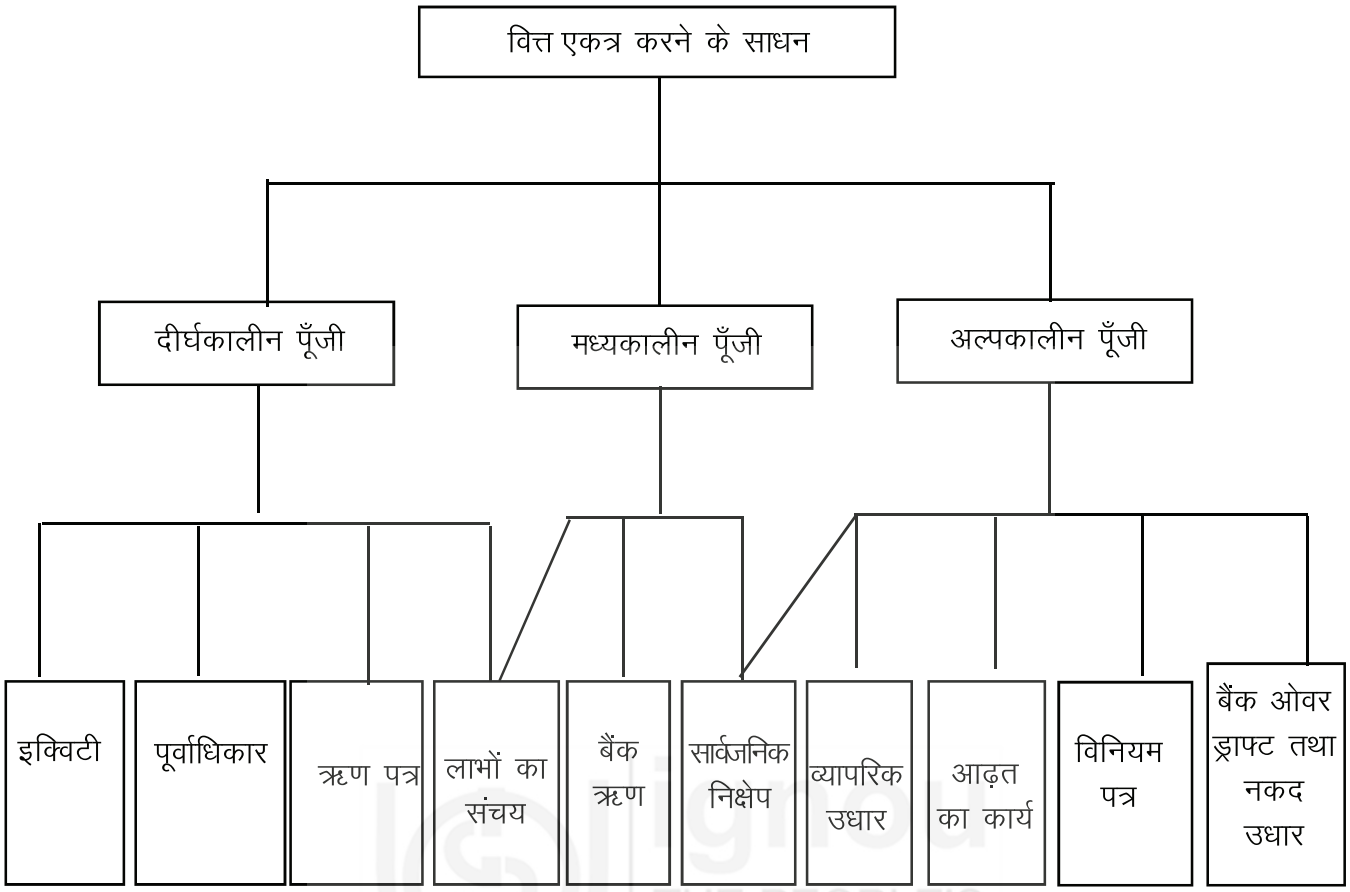
दीर्घकालीन तथा अल्पकालीन दोनों प्रकार के वित्त प्राप्त करने का एक अन्य साधन है – समय-समय पर अर्जित किए गए लाभ का पुनर्निवेश। कंपनियों के पास वित्त एकत्रित करने के कई साधन होते हैं। दीर्घकालीन तथा मध्यकालीन पूँजी एकत्र करने के लिए कंपनियों के पास निम्नलिखित विकल्प उपलब्ध होते हैं :

1) शेयरों का निर्गमन
2) ऋण पत्रों का निर्गमन
3) वित्तीय संस्थाओं से ऋण
4) वाणिज्यिक बैंकों से ऋण
5) सार्वजनिक निक्षेप
6) लाभों का संचय

अल्पकालीन पूँजी प्राप्त करने के लिए निम्न साधनों का उपयोग किया जा सकता है :

1) व्यापारिक साख
2) आढ़त के कार्य
3) विनिमय पत्र
4) बैंक ओवरड्रॉफ्ट तथा उधार
5) सार्वजनिक निक्षेप

वित्त एकत्र करने के लिए कंपनियों द्वारा उपयोग में लाए जाने वाले विभिन्न साधनों के लिए चित्र 4.2 को देखिए।



चित्र 4.2 : कंपनियों के द्वारा वित्त के साधन

टिप्पणी : 1) **सार्वजनिक निक्षेप का उपयोग मध्यकालीन तथा अल्पकालीन दोनों के लिए किया जा सकता है।**

2) **लाभों के संचय का उपयोग दीर्घकालीन पूँजी तथा अल्पकालीन पूँजी दोनों के लिये किया जा सकता है।**

4.5.1 शेयरों का निर्गमन (Issue of Shares)

कंपनियों के पास दीर्घकालीन पूँजी प्राप्त करने का सबसे महत्पूर्ण साधन शेयरों का निर्गमन करना है। शेयर दो प्रकार के होते हैं (i) इक्विटी शेयर (Equity Shares) तथा (2) पूर्वाधिकार शेयर (Preference Shares)। शेयरों के संबंध में शेयरधारियों का दायित्व शेयर के अंकित मूल्य तक सीमित होता है तथा ये शेयर आसानी से हस्तांतरणीय भी होते हैं। इन्हीं कारण से निवेशक शेयरों में अपनी पूँजी लगाना अधिक पंसद करते हैं। इसके अतिरिक्त निर्गमित शेयरों का अंकित मूल्य भी साधारणतया कम होता है, जैसे प्रति शेयर 10 रु. अथवा 100 रु.। इस प्रकार शेयरों में निवेश करना साधारण लोगों की पहुंच में होता है। जैसा कि आप जानते हैं कि निजी कंपनी अपनी शेयर पूँजी में अंशदान के लिए जन साधारण को आमंत्रित नहीं कर सकती। ये कंपनियां कुछ सीमित व्यक्तियों को ही शेयर निर्गमित कर सकती हैं, जिनकी संख्या 50 से अधिक नहीं होनी चाहिए। निजी कंपनियों के शेयर स्वतंत्र रूप से हस्तांतरणीय भी नहीं होते। लेकिन सार्वजनिक सीमित दायित्व वाली कंपनियों के लिए ऐसे प्रतिबंध नहीं होते।

इक्विटी शेयर : स्वामित्व पूँजी एकत्र करने के लिए इक्विटी शेयर निर्गमित करने के कई लाभ होते हैं। इन शेयरों पर दिए जाने वाले लाभांश की दर उपलब्ध लाभों पर तथा संचालकों के विवेक पर निर्भर करती है। इसलिए कंपनी पर कोई स्थायी बोझ नहीं होता।

लाभ वाले वर्षों में शेयर होल्डर लाभांश की ऊंची दर की आशा करते हैं। लेकिन साथ ही वे कंपनी की आय की अनिश्चितता से संबंधित जोखिम भी उठाते हैं। इस प्रकार इन शेयरों में निर्गमन से जोखिम पूँजी उपलब्ध होती है। इसके अतिरिक्त इक्विटी शेयरों के निर्गमन से प्राप्त की गई पूँजी का उपयोग स्थायी रूप से किया जा सकता है। जब तक कंपनी का अस्तित्व कायम रहा है तब तक इसे वापस लौटाने की आवश्यकता नहीं होती। इसके अतिरिक्त इक्विटी शेयरों के लिए कंपनी की परिसंपत्तियों को गिरवी रखने की आवश्यकता भी नहीं होती। परिसंपत्तियों की जमानत पर ऋण के रूप में अतिरिक्त धन प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन इक्विटी शेयरों के अत्याधिक निर्गमन से प्रबंधकों के लिए, जो कंपनी के प्रबंध पर नियंत्रण रखना चाहते हैं, कुछ समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं । धारक को प्रत्येक इक्विटी शेयरों के पीछे एक मत देने का अधिकार होता है। इस प्रकार इक्विटी शेयरों के धारक अलग-अलग समूह बना सकते हैं तथा कंपनी के वर्तमान संचालकों के विरुद्ध मत दे सकते हैं ऐसा करना हमेशा कंपनी के हित में नहीं भी हो सकता। इसके साथ-साथ केवल इक्विटी शेयर पूँजी पर ही पूर्णतया निर्भर रहने से कंपनी को ''इक्विटी पर व्यापार'' (Trading on equity) का लाभ भी प्राप्त नहीं हो सकेगा। इसके अतिरिक्त एक बार इक्विटी शेयर निर्गमित करने के बाद वह रकम स्थायी पूँजी का रूप ले लेती है। जो कभी-कभी उस रकम से कहीं अधिक हो जाती है; जिसका उपयोग कंपनी लाभप्रद ढंग से कर सकती। ऐसी स्थिति में विस्तृत वैधानिक औपचारिकताओं का पालन किए बिना उस पूँजी को कम रकने का दूसरा कोई रास्ता नहीं होता। साथ ही शेयर पूँजी में कमी होने से कंपनी की व्यावसायिक छवि पर भी बुरा असर पड़ता है।

पूर्वाधिकार शेयर : दीर्घकालीन पूँजी प्राप्त करने का एक अन्य साधन है – पूर्वाधिकार शेयरों का निर्गमन। पूर्वाधिकार शेयरों के निर्गमन के कुछ विशिष्ट लाभ होते हैं। इसमें शेयरों पर लाभ की उपलब्धता को ध्यान में रखते हुए एक निश्चित दर से लाभांश दिया जाता हैं। अतः कंपनी के वित्तीय साधनों पर कोई अनिवार्य बोझ नहीं पड़ता। साथ ही ऐसे निवेशक जो अपनी बचत को पूर्णतः जोखिम में नहीं डालना चाहते तथा जो एक ऐसी आय से संतुष्ट हैं जो ऋण पर दिए जाने वाले ब्याज से अधिक है, इन शेयरों को ही अधिक पंसद करते हैं। दूसरे, पूर्वाधिकार शेयर होल्डर को मतदान का अधिकार नहीं होता। इस प्रकार वे कंपनी के प्रबंधन में भाग नहीं ले सकते तथा प्रवर्तकों को इससे कोई खतरा नहीं होता। पूर्वाधिकार शेयरों का अन्य लाभ यह है कि अच्छे वर्षों में कंपनी इक्विटी शेयर होल्डर के लिए उच्च दर के लाभांश की घोषणा कर सकती है, क्योंकि पूर्वाधिकार शेयरों पर लाभांश की दर निश्चित होती है। इसके अतिरिक्त पूर्वाधिकार शेयर पूँजी का स्थायी उपयोग अनिवार्य नहीं होता। कंपनी शोध्य पूर्वाधिकार शेयर जारी कर सकती है तथा आवश्यकता पड़ने पर उन्हें वापस लौटा सकती है और इस पूँजी का प्रतिस्थापन किसी अन्य प्रकार की पूँजी का निर्गमन करके किया जा सकता है।

लाभांश प्राप्त करने में तथा कंपनी के समापन पर पूँजी की वापसी से संबंधित प्राथमिक अधिकारों के कारण ही कुछ निवेशक पूर्वाधिकार शेयर प्राप्त करना चाहते हैं। लेकिन कुछ अन्य निवेशक स्थिर आय तथा लाभांश न मिलने की जोखिम के कारण पूर्वाधिकार शेयर लेना नहीं चाहते। इसके अतिरिक्त उन्हें शेयरों के बढ़ते हुए बाजार मूल्यों से भी कोई विशेष लाभ नहीं होता जैसे पूर्वाधिकार शेयर में होता है।

4.5.2 ऋणपत्रों का निर्गमन (Issue of Debentures)

साधारणतया कंपनियों को उधार लेने का तथा निर्दिष्ट अंकित मूल्य वाली प्रतिभूतियों के रूप में ऋणपत्रों को जारी करके ऋण प्राप्त करने का अधिकार होता है। ऋण पत्रों पर देय ब्याज की दर निर्गमन के समय ही निश्चित कर दी जाती है तथा कंपनी की संपत्ति तथा

परिसंपत्तियों पर प्रभार लगा कर उनकी प्राप्ति को निश्चितता प्रदान कर दी जाती है जिससे उनके भुगतान के लिए आवश्यक सुरक्षा मिल जाती है। ऋण पत्रों का निर्गमन अधिकर व्यवसाय की दीर्घकालीन आवश्यकताओं के लिए धन जुटाने के उद्देश्य से किया जाता है। ऋणपत्रों के निर्गमन के कुछ लाभ हैं जो निम्न प्रकार हैं–

i) ऋणपत्रों पर ब्याज की दर निश्चित होने के कारण स्थिर आय वाली कंपनियां 'इक्विटी पर व्यापार' के द्वारा इक्विटी पूँजी पर अधिक आय प्राप्त कर सकती हैं।

ii) ब्याज की दर शेयर पर प्रत्याशित आय की दर से साधारणतया कम होती है। इसका कारण यह है कि ऋणपत्रधारियों को कोई जोखिम नहीं उठाना पड़ता।

iii) ऋणपत्रधारियों को मतदान का अधिकार नहीं हाता। इसलिए कंपनी के प्रबंधन पर, जो प्रवर्तकों अथवा वर्तमान संचालकों द्वारा किया जाता है, कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

लेकिन यदि कंपनी की आय अनिश्चित है अथवा उसका पहले से अनुमान नहीं लगाया जा सकता तो ब्याज के भुगतान तथा मूल रकम की वापसी के निश्चित उत्तरदायित्वों के कारण ऋणपत्रों के निर्गमन से कुछ गंभीर समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं। यदि कंपनी को लाभ नहीं होता तब भी वह ब्याज चुकाने के लिए बाध्य होती है। यदि ब्याज के भुगतान में अथवा मूल रकम की वापसी में कोई चूक हो जाती है तो न्यायालय के आदेश द्वारा परिसंपत्तियों को कुर्क किया जा सकता है। व्यापारिक कंपनियों के पास साधारण रूप से अधिक स्थायी परिसंपत्तियां नहीं होतीं, इसलिए वे ऋणपत्रों के निर्गमन के लिए जमानत नहीं दे सकतीं। यहां तक कि विनिर्माण की कंपनियाँ भी अपनी संपत्तियों और परिसंपत्तियों के अनुपात में ही ऋण ले सकती हैं।

4.5.3 वित्तीय संस्थाओं से ऋण (Loan from Financial Institutions)

कंपनियां अपने दीर्घकालीन तथा मध्यकालीन ऋण वित्तीय संस्थाओं जैसे भारतीय औद्योगिक वित्त निगम, भारतीय औद्योगिक साख एवं निवेश निगम, राज्य स्तर के औद्योगिक विकास निगमों आदि से प्राप्त कर सकती हैं। इकाई 6 में आप वित्तीय संस्थाओं के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे। ये वित्तीय संस्थाएं अनुमोदित योजनाओं या परियोजनाओं के लिए अधिक 25 वर्ष तक की अवधि के ऋण प्रदान करती हैं। ऐसे ऋणों को जिन्हें स्वीकृत होना है उन्हें कंपनी की संपत्ति को गिरवी रखकर अथवा कंपनी के माल, शेयर, सोना आदि को बंधक बनाकर अथवा रेहन रखकर सुरक्षा का आवरण अवश्य प्राप्त होना चाहिए।

साधारणतया ये वित्तीय संस्थाएं कंपनी के कार्य-संपादन पर कुछ नियंत्रण प्राप्त करने के लिए एक या दो निदेशक (Director) नियुक्ति करती हैं। ये मनोनीत निदेशकमंडल को ऐसे निर्णय लेने से रोक सकते हैं जो उधार देने वाली संस्था के हित में न हो। ऋण समझौते में एक उल्लिखित अवधि के पश्चात् ऋणों को इक्विटी पूँजी में परिवर्तित करने की व्यवस्था की जा सकती है, यदि उधार देने वाली संस्था इस प्रकार का निर्णय लेती है।

वित्त प्राप्त करने के इस साधन का सबसे महत्वपूर्ण लाभ यह है कि इस पर देय ब्याज की दर बाजार की ब्याज की दर से कम होती है। लेकिन ऋण की स्वीकृति से पहले निवेश परियोजना की सूक्ष्म छानबीन की जाती है। उन कंपनियों को प्राथमिकता दी जाती है जिनकी परियोजनाएं पांच वर्षीय योजना में दी गईं औद्योगिक विकास की प्राथमिकताओं के अनुरूप होती हैं। परियोजना की संभावित लाभार्जन क्षमता का तथा कंपनी की ब्याज चुकाने एवं ऋण वापसी संबंध उत्तदायित्वों को निभाने की योग्यता का बड़ी सूक्ष्मता से मूल्यांकन किया जाता है। साथ ही कंपनियों को कई वैधानिक एवं तकनीकी, औपचारिकताओं को भी पूरा करना पड़ता है। इस प्रकार वित्तीय संस्थाओं से ऋण प्राप्त करने संबंधी समझौते की प्रक्रिया में बहुत अधिक समय लग जाता है।

4.5.4 वाणिज्यिक बैंकों से ऋण (Lone from Commercial Banks)

कंपनियां अपनी संपत्तियों तथा परिसंपत्तियों की जमानत पर वाणिज्यिक बैंकों से मध्यकालीन ऋण प्राप्त कर सकती है। इस प्रकार परिसंपत्तियों के आधुनिकीकरण तथा नवीनीकरण के लिए बैंकों से आवश्यक धन प्राप्त किया जा सकता है। यदि बैंक कंपनी की आय अर्जित करने की क्षमता से तथा पर्याप्त रोकड़ प्रवाह उत्पन्न करने की योग्यता से संतुष्ट हो जाता है तो साधारणतया औद्योगिक परिसंपत्तियों के मूल्य के 50 से 75 प्रतिशत तक के बराबर का ऋण स्वीकृत कर दिया जाता है। बैंक कंपनी के प्रबंध में हस्तक्षेप में नहीं करता। वित्त प्राप्त करने के इस साधन में परिसंपत्तियों को गिरवी रखने के अलावा किसी अन्य वैधानिक औपचारिकता को पूरा करने की आवश्यकता नहीं होती। इसके अतिरिक्त ऋण को किश्तों में वापस लौटाया जा सकता है तथा इस सीमा तक ब्याज की बचत की जा सकती है। कंपनी के निदेशकों की व्यक्तिगत जमानत पर भी बैंकों से अल्पकालीन ऋण भी प्राप्त किए जा सकते हैं। ऐसे ऋणों को 'बेजमानती उधार'' (Clean advances) कहा जाता है।

4.5.5 सार्वजनिक निक्षेप (Public Deposit)

कंपनियां प्रायः शेयर होल्डरों, कर्मचारियों और जन-साधारण को अपनी बचत को कंपनी के पास जमा कराने के लिए आमंत्रित करके धन एकत्र करना सुविधाजनक तथा आवश्यक समझती है। कंपनी अधिनियम कंपनियों को एक बार में 3 वर्ष तक के लिए ऐसे जमा प्राप्त करने की अनुमति देता है। इस प्रकार कंपनियां अपनी अल्पकालीन तथा मध्यकालीन वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सार्वजनिक निक्षेप स्वीकार कर सकती हैं। यह वित्त प्राप्त करने का एक बहुत ही आसान तरीका है जिसके लिए कंपनी को कंपनी अधिनियम द्वारा निर्धारित की गई विधि के अनुसार अपनी वित्तीय स्थिति का विवरण देते हुए समाचार पत्रों में केवल विज्ञापन देना होता है। इस प्रकार के निक्षेप प्राप्त करने के लिए परिसंपत्तियों अथवा अन्य प्रतिभूतियों को गिरवी रखकर सुरक्षा आवरण देने की आवश्यकता नहीं होती। इसके अतिरिक्त इस प्रकार के निक्षेप बैंक में कराई गई जमा पर दी जाने वाली ब्याज दर की अपेक्षा ऊँची ब्याज दर का प्रलोभन देकर प्राप्त किए जा सकते हैं। लेकिन कंपनियों को सार्वजनिक निक्षेप से असीमित धनराशि प्राप्त करने की अनुमति नहीं है।

4.5.6 लाभों का संचय (Retention of Profits)

लाभप्रद कंपनियां साधारणतया लाभों की समस्त राशि का लाभांश के रूप में वितरण नहीं करतीं। लाभों का एक निश्चित भाग रिजर्व में रख दिया जाता है, तथा इसका उपयोग अतिरिक्त पूँजी के रूप में किया जाता है। इस प्रकार किसी कंपनी की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति वार्षिक लाभों के एक भाग का संचय करके भी की जा सकती है। इसे ''लाभों का पुनर्निवेश'' (Reinvestment of profits or Ploughing back of profits) माना जा सकता है। चूंकि संचित लाभ पर वास्तव में कंपनी के शेयर होल्डरों का ही हक होता है अतः इन्हें पूँजी का ही एक भाग माना जाता है तथा इनका उपयोग कंपनी की दीर्घकालीन, मध्यकालीन तथा अल्पकालीन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किया जा सकता है। इसका प्रमुख लाभ यह है कि इसके लिए किसी वैधानिक औपचारिकता को पूरा करने की आवश्यकता नहीं होती और न ही कंपनी को पूँजी प्राप्त करने के लिए बाहर के निवेशकों पर आश्रित रहना पड़ता है। लाभों का संचय एक प्रकार के व्यवसाय का ''स्वयं वित्तपोषण'' (Self Financing) होता है।

लेकिन केवल चालू लाभप्रद कंपनियां ही वित्त जुटाने के इस साधन का उपयोग कर सकती है । लाभप्रद कंपनियों को वर्तमान लाभ की 10 प्रतिशत तक ही राशि के बराबर की रकम

के अंतरण की विधिक रूप से अनुमति होती है। कोई भी कंपनी की 10 प्रतिशत से अधिक राशि भी संचित कोषों को स्थानांतरित कर सकती है, यदि ऐसी कंपनी कंपनी-अधिनियम के अंतर्गत निर्धारित नियमों में दी गई कुछ शर्तों को पूरा करती है। संक्षेप में पिछले वर्षों में वितरित किए गए लाभांश के अनुरूप लाभांश की एक न्यूनतम दर की घोषणा करने के बाद ही वर्तमान लाभों की 10 प्रतिशत से अधिक राशि का संचय किया जा सकता है।

4.5.7 व्यापारिक साख (Trade Credit)

जिस प्रकार कंपनियां वस्तुओं का उधार विक्रय करती हैं उसी प्रकार वे विक्रेताओं से कच्चे माल, यंत्रों के हिस्से, सामग्री तथा फालतू पुर्जे आदि का उधार क्रय भी करती हैं। इसलिए व्यापारिक लेनदारों को देय अदत्त राशि तथा उधार क्रय से संबंधित देय विनिमय पत्र भी वित्त प्राप्त करने के स्रोत माने जाते हैं। माल के विक्रेता साधारणतया छः महीने तक की अवधि की साख स्वीकृत करते हैं तथा इस प्रकार वे कंपनी को अल्पकालीन वित्त प्रदान करते हैं। इस प्रकार के वित्त की उपलब्धता व्यवसाय के परिणाम से घनिष्ठ रूप से संबंधित होती है । जब वस्तुओं के उत्पादन तथा विक्रय में वृद्धि होती है तो क्रय की मात्रा में भी स्वाभाविक वृद्धि होती है तथा व्यापारिक साख भी अधिक मात्रा में उपलब्ध होती है। दूसरी ओर यदि विक्रय में कमी होती है तो इसी के अनुरूप कच्चे माल आदि के क्रय में भी कमी होती है। इस प्रकार लेनदारों के शेष (देय खाते) तथा देय विनिमय पत्र दोनों ही सामग्री एव ंनिर्मित वस्तुओं के स्टॉक तथा देनदारों जैसी चालू परिसंपत्तियों के लिए वित्त प्राप्त करने में कंपनियों की सहायता करते हैं। लेकिन व्यापारिक साख के कारण उस नकद कटौती की हानि होती है जो क्रय की तिथि के सात से दस दिनों के भीतर भुगतान करने से प्राप्त की जा सकती थी। इस हानि को व्यापारिक साख की लागत माना जाता है।

4.5.8 आढ़त का कार्य (Factoring)

उधार विक्रय के कारण ग्राहकों के द्वारा कंपनी को देय रकम साधारणतया उस अवधि की अदत्त रहती है, जिस अवधि के लिए माल उधार दिया गया था अर्थात् जब तक कि देनदारों से रकम वसूल नहीं कर ली जाती। यदि आवश्यक हो तो देनदारों के शेष किसी बैंक को सौंपे जा सकते हैं तथा बैंक से अग्रिम राशि प्राप्त कर ली जाती है।

इस व्यवस्था के अधीन देनदारों से रकम वसूल करने का उत्तरदायित्व बैंक अपने ऊपर ले लेता है जिसके लिए कंपनी को एक निश्चित प्रभार का भुगतान करना पड़ता है। यह आपातकालीन पूँजी प्राप्त करने का एक साधन है तथा इसे ''आढ़त का कार्य'' कहा जाता है। इससे देनदारों द्वारा देय ऋण वसूली के लिए देय होने से पहले ही कंपनियों को देनदारों के शेष धनों के विरुद्ध वित्त प्राप्त करने की लागत माना जाता है। बैंकों द्वारा उपलब्ध कराई जाने वाली रकम का अनुमान अशोध्य ऋणों की जोखिम को ध्यान में रखकर ही लगाया जाता है ताकि देनदारों द्वारा ऋणों की वसूली न होने की स्थिति के लिए व्यवस्था हो सके। आढ़त के कार्य का एक दोष यह है कि उन ग्राहकों को जो वास्तव में कठिनाई में हैं भुगतान देर से करने की सुविधा अब प्राप्त नहीं होती जो उन्हें इस व्यवस्था की अनुपस्थिति में कंपनी से प्राप्त हो सकती थी।

4.5.9 विनिमय पत्रों को बट्टे पर भुनाना (Discounting of Bill of Exchange)

अल्पकालीन वित्त प्राप्त करने के लिए कंपनियों द्वारा इस साधन का उपयोग व्यापक रूप से किया जाता है। जब वस्तुओं का उधार विक्रय किया जाता है तो साधारणतया वस्तुओं के क्रेताओं की स्वीकृति के लिए विनिमय पत्र तीन अथवा छः महीनों के बाद देय होते हैं। इन विनिमय पत्रों को कंपनिया मियाद पूरी होने की तिथि तक अपने पास रखने के स्थान

पर उन्हें वाणिज्य बैंकों से बटटे् पर भुनाना अधिक पसंद करती हैं जिसके लिए उन्हें एक प्रभार देना पड़ता है जिसे बैंक बट्टा कहा जाता है। ये विनिमय पत्र बैंक के पक्ष में पृष्ठांकित किए जाते हैं ताकि परिपक्व होने पर बैंक संबंधित पक्षों से रकम वसूल कर सके। बट्टे की रकम विनिमय पत्रों को भुनाते समय ही इन पत्रों के मूल्य में से घटा दी जाती है। बैंकों द्वारा लगाए जाने वाले बट्टे की दर समय-समय पर भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा निर्धारित की जाती है। वास्तव में यह विनिमय पत्रों को बट्टे पर भुनाने की तिथि से लेकर इनके परिपक्व होने की तिथि तक ही अवधि के ब्याज के बराबर होती है। यदि परिपक्व होने पर कोई विनिमय पत्र अस्वीकृत हो जाता है तो बैंक इसे कंपनी को वापस लौटा देता है तथा कंपनी बैंक को उस राशि का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी हो जाता है। बैंक द्वारा लगाया जाने वाला बट्टा ही वित्त प्राप्त करने के इस प्रकार के साधन की लागत होता है।

4.5.10 ओवरड्रॉफ्ट तथा कैश क्रेडिट (Overdraft and Cash Credit)

वाणिज्य बैंकों के कैश क्रेडिट तथा ओवरड्रॉफ्ट की व्यवस्था करनी अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कंपनियों द्वारा उपयोग में लाया जाने वाला एक सामान्य तरीका है। कैश क्रेडिट (नकद साख) से अभिप्राय ऐसी व्यवस्था से है जिसके अनुसार वाणिज्य बैंक निर्धारित सीमा के अन्दर, जिसे कैश क्रेडिट की सीमा कहा जाता है, समय-समय पर अग्रिम के रूप में पैसा निकालने की अनुमति देते हैं। ऐसी सुविधा वस्तुओं के स्टॉक की जमानत पर अथवा ऐसे प्रतिज्ञापत्रों की जमानत पर प्रपत्रों पर किसी दूसरे व्यक्ति के हस्ताक्षर भी होते हैं अथवा अन्य क्रय-विक्रय योग्य लेख-पत्रों जैसे सरकारी बॉण्ड आदि की जमानत पर दी जाती है। कंपनी को स्वीकृत सीमा के अंदर समय-समय पर आवश्यक रकम निकालने की अनुमति होती है। जमानत के मूल्य के आधार पर नकद साख की सीमा भी संशोधित की जा सकती है। निकाली गई रकम जब भी संभव हो तब लौटाई जा सकती है। ब्याज जमा से अधिक निकाली गई रकम पर लगाया जाता है।

ओवरड्रॉफ्ट बैंक साथ एक ऐसी अस्थायी व्यवस्था है जो कंपनी को एक निश्चित सीमा तक अपने चालू खाते में उपलब्ध रकम से अधिक रकम निकलवाने की अनुमति देती है। कैश क्रेडिट की तरह ही ओवरड्रॉफ्ट सुविधा भी जमानत के आधार पर दी जा सकती है। ब्याज वास्तव में निकाली गई अधिक रकम पर ही लगाया जाता है।

कैश क्रेडिट तथा ओवरड्रॉफ्ट पर लगाई जाने वाली ब्याज की दर बैंक जमा पर दी जाने वाली ब्याज की दर से अधिक होती है। लेकिन वित्त प्राप्त करने के इस साधन के अंतर्गत बदलती हुई आवश्यकताओं के अनुसार अल्पकालीन कार्यों के लिए धन निकलवाने की सुविधा प्राप्त होती है।

बोध प्रश्न 2

1) नीचे वित्त जुटाने के छह साधन दिए गए हैं। उन साधनों पर निशान लगाइए जिनका उपयोग स्थायी पूँजी प्राप्त करने के लिए किया जा सकता है।

   i) इक्विटी शेयरों का निर्गमन

   ii) बैंकों से बेजमानती उधार

   iii) सार्वजनिक निक्षेप

   iv) वित्तीय संस्थाओं से ऋण

v) विनिमय पत्रों को बट्टे पर भुनाना

vi) पूर्वाधिकार शेयरों का निर्गमन

2) अल्पकालीन वित्त प्राप्त करने के लिए किसी कंपनी द्वारा निम्नलिखित साधनों में से किन साधनों का उपयोग किया जा सकता है? केवल उन्हीं साधनों पर निशान लगाइये :

क) ऋण पत्रों का निर्गमन

ख) कैश क्रेडिट

ग) सार्वजनिक निक्षेप

घ) बैंक ओवरड्रॉफ्ट

ड़) बैंक से आवधिक ऋण

3) निम्नलिखित कथनों में से कौन से कथन सत्य हैं तथा कौन से असत्य हैं।

i) जब कोई कंपनी आवश्यक पूँजी जुटाने के लिए पूर्वाधिकार शेयरों का तथा ऋणपत्रों का निर्गमन करती है तब ''इक्विटी पर व्यापार'' होता है।

ii) स्थायी पूँजी पूर्वाधिकार शेयरों का निर्गमन करके प्राप्त की जा सकती है।

iii) ''आढ़त के कार्य'' से तात्पर्य है किसी बैंक को रकम वसूल करने वाले एजेंट के रूप में नियुक्त करना।

iv) इक्विटी शेयर पूँजी का उपयोग स्थायी परिसंपत्तियों तथा चालू परिसंपत्तियों दोनों में निवेश के लिए किया जा सकता है।

v) विनिमय पत्रों को ब्याज का अग्रिम भुगतान करके किसी बैंक से भुनाया जा सकता है।

vi) किसी कंपनी द्वारा सार्वजनिक निक्षेप से कितनी भी रकम प्राप्त की जा सकती है।

vii) ऋणपत्रों के निर्गमन के लिए परिसंपत्तियों की पर्याप्त जमानत अवश्य होनी चाहिए।

viii) कैश क्रेडिट ठीक उसी तरह का होता है जैसी बैंकों से बे-जमानती उधार।

ix) दीर्घकालीन उद्देश्यों के लिए बैंकों से आवधिक ऋण प्राप्त किये जा सकते हैं।

x) व्यापारिक साख से अल्पकालीन निवेशों के लिए वित्त प्राप्त करने की सहायता मिलती है।

4) कोष्ठकों में दिए गए शब्दों में से उपयुक्त शब्द चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

क) इक्विटी शेयर ..... के लिए निर्गमित किए जाते हैं। (स्थायी परिसंपत्तियों में निवेश, कार्य संपादन संबंधी व्ययों के लिए धन जुटाने, संयंत्रों के आधुनिकीकरण)

ख) अल्पकालीन पूँजी साधारणतया ..... से प्राप्त की जाती (वित्तीय संस्थाओं, जन-साधारण, वाणिज्यिक बैंक)

ग) कैश क्रेडिट ..... की जमानत पर स्वीकृत किया जाता है। (स्थायी, परिसंपत्तियों, माल के स्टॉक, बैंक शेष)

घ) व्यापारिक साख की लागत ..... होती है। (लाभ की हानि, नकद कटौती की हानि, ब्याज की हानि)

ड़) उधार विक्रय के लिए ग्राहकों से प्राप्त होने वाली रकम के लिए .... वित्त की आवश्यकता होती हैं (दीर्घकालीन, मध्यकालीन, अल्पकालीन)

च) कंपनियों द्वारा सार्वजनिक निक्षेप अधिक से अधिक ..... वर्ष तक की अवधि के लिए प्राप्त किए जा सकते हैं। (दो, तीन, चार)

4.6 सारांश

प्रत्येक व्यावसायिक फर्म को अपने कार्यकलापों के लिए धन अथवा वित्त की आवश्यकता होती है। आधुनिक युग में वित्त का महत्व दो कारणों से बढ़ गया है : i) आजकल व्यावसायिक कार्यकलाप पहले की अपेक्षा बड़े पैमाने पर किए जाते हैं, तथा ii) विनिर्माण प्रक्रियाएं पहले की अपेक्षा अधिक जटिल हो गई हैं।

व्यापक रूप से व्यवसाय की वित्तीय आवश्यकताएँ दो प्रकार की होती हैं i) स्थायी पूँजी तथा ii) कार्यशील पूँजी। स्थायी परिसंपत्तियों के क्रय के लिए आवश्यक वित्त को स्थायी पूँजी अथवा दीर्घकालीन पूँजी कहा जाता है। चालू परिसंपत्तियों में निवेश के लिए आवश्यक वित्त को कार्यशील पूँजी अथवा प्रचल पूँजी कहा जाता है। साधारणतया व्यवसाय की प्रकृति तथा व्यावसायिक इकाई का आकार इस बात का निर्धारण करते हैं कि व्यवसाय में कितनी स्थायी पूँजी की आवश्यकता होगी। दूसरी ओर कार्यशील पूँजी की मात्रा व्यवसाय की प्रकृति, विनिर्माण प्रक्रिया पूर्ण हेने की अवधि तथा उन शर्तों पर निर्भर करती है जिन पर वस्तुओं का क्रय तथा माल का विक्रय किया जाता है।

व्यवसाय की वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जुटाए गए वित्त को स्वामित्व पूँजी तथा ऋण पूँजी के रूप में विभाजित किया जा सकता है। व्यवसाय में स्वामियों (मालिकों, साझेदारों अथवा शेयर होल्डरों) द्वारा लगाई गई पूँजी को स्वामित्व पूँजी कहा जाता है। ऋण पूँजी प्रत्यक्ष ऋणों द्वारा अथवा किसी कंपनी के लिए ऋणपत्रों अथवा बॉण्डों के निर्गमन द्वारा प्राप्त की जा सकती है। कंपनियों द्वारा स्वामित्व पूँजी शेयरों के निर्गमन से प्राप्त की जाती है। ऋण पूँजी का उपयोग बहुधा स्वामियों के निवेश पर प्रतिफल की ऊंची दर का लाभ प्राप्त करने के लिए किया जाता है। इसे ''इक्विटी पर व्यापार'' कहा जाता है।

पूँजी संरचना से तात्पर्य उस सापेक्ष अनुपात से होता है जिसमें कुल आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए दीर्घकालीन वित्त के विभिन्न साधनों का उपयोग किया जाता है। कुल पूँजी में उस पूँजी के अनुपात को पूँजी का मिलान कहा जाता है, जिस पर स्थायी ब्याज दिया जाता है। दीर्घकालीन वित्त तथा अल्पकालीन वित्त में प्रमुख अंतर यह है कि दीर्घकालीन वित्त की आवश्यकता एक लंबी अवधि अर्थात् पांच वर्ष अथवा उससे भी अधिक अवधि तक के लिए होती है, जबकि अल्पकालीन वित्त की आवश्यकता थोड़े समय के लिए अर्थात् एक वर्ष से भी कम समय के लिए होती है। दो से पांच वर्षों तक की अवधि के लिए आवश्यक वित्त को मध्यकालीन वित्त कहा जाता है।

एकल स्वामित्व संगठनों तथा साझेदारों फर्मों के पास व्यवसाय के लिए वित्त के सीमित साधन होते है। वे वित्त प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित साधनों में से किसी एक अथवा अधिक साधनों का उपयोग कर सकते हैं – स्वयं की बचतों का निवेश, मित्रों तथा संबंधियों से ऋण, वाणिज्य बैंकों से अग्रिम तथा वित्तीय कंपनियों से ऋण। इन सबके लिए

उनकी अपनी व्यक्तिगत जमानत अथवा अपनी संपत्तियों तथा परिसंपत्तियों की जमानत देनी पड़ती है।

कोई कंपनी दीर्घकालीन तथा मध्यकालीन वित्त की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए निम्नलिखित साधनों में से किसी एक अथवा अधिक साधनों का प्रयोग कर सकती है – शेयरों का निर्गमन, ऋणपत्रों का निर्गमन, वित्तीय संस्थाओं से ऋण, वाणिज्य बैंकों से ऋण, सार्वजनिक निक्षेप तथा लाभों का संचय। अल्पकालीन वित्त प्राप्त करने के लिए कोई कंपनी व्यापारिक साख, आढ़त के कार्य, विनिमय पत्र भुनाने, ओवरड्रॉफ्ट एवं कैश क्रेडिट की व्यवस्था तथा सार्वजनिक जमा संकलन आदि साधनों का उपयोग कर सकती है। इनमें से प्रत्येक साधन के कुछ लाभ तथा दोष हैं।

4.7 शब्दावली

ऋण पूँजी (Borrowed Capital) : ऋणों द्वारा अथवा ऋणपत्रों के निर्गमन द्वारा प्राप्त किया गया धन, जिसके फलस्वरूप निवेशकों, को (अर्थात् ऋणदाताओं को) ब्याज का निरंतर भुगतान प्राप्त करने तथा देय होने पर ऋण की वापसी का दावा करने का अधिकार प्राप्त होता है।

पूँजी मिलान (Capital Gearing) : किसी व्यवसाय की कुल पूँजी में स्थायी ब्याज वाली पूँजी का अनुपात।

पूँजी संरचना (Capital Structure): वह अनुपात जिसमें कुल वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए दीर्घकालीन वित्त के विभिन्न स्रोतों का उपयोग किया जाता है, जैसे शेयर, ऋणपत्र, ऋण संचित लाभ आदि।

आढ़त का कार्य (Factoring) : देनदारों को किसी बैंक के सुपुर्द करना तथा नियत प्रभार का भुगतान करके बैंक पर ऋण वसूली का उत्तरदायित्व डालकर उससे अग्रिम रोकड़ प्राप्त करना।

स्थायी पूँजी (Fixed Capital) : स्थायी परिसंपत्तियों जैसे भूमि, भवन संयंत्र एवं मशीनरी, फर्नीचर आदि के क्रय के लिए आवश्यक धन।

दीर्घकालीन वित्त (Long-term Finance) : एक लंबे समय तक अर्थात् पांच अथवा इससे अधिक वर्षों के लिए आवश्यक वित्त जिसका उपयोग स्थायी परिसंपत्तियों के क्रय के लिए तथा चालू परिसंपत्तियों के एक भाग में निरंतर निवेश के लिए किया जाता है।

स्वामित्व पूँजी (Ownership Capital) : व्यवसाय के स्वामियों द्वारा स्थायी उपयोग लिए निवेश किया गया धन, जिससे उनको यह निर्णय लेने का अधिकार प्राप्त होता है कि व्यावसायिक कार्यकलापों का प्रबंध किस प्रकार किया जाएगा तथा लाभों में उनका हिस्सा कितना होगा।

सार्वजनिक निक्षेप (Public Deposits) : मध्यकालीन अथवा अल्पकालीन वित्तीय आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जन-साधारण से प्राप्त धन।

अल्पकालीन वित्त (Short-term Finance) : अल्प समय के लिए अर्थात् एक वर्ष से भी कम समय के लिए आवश्यक धन, जिसका उपयोग चालू परिसंपत्तियों में निवेश के लिए किया जाता है, जो व्यवसाय के बदलते हुए परिणाम के कारण घटती बढ़ती रहती हैं।

व्यापारिक साख (Trade Credit) : कच्चे माल तथा उपभोग्य मदों के विक्रेताओं को देय अदत्त रकम तथा उधार क्रय से संबंधित देय प्रपत्र।

इक्विटी पर व्यापार (Trading on Equity) : इक्विटी पूँजी पर आय की ऊंची दर प्राप्त करने के लिए ऋण पूँजी का उपयोग।

कार्यशील पूँजी (Working Capital) : कच्चे माल के स्टॉक, निर्मित वस्तुओं के स्टॉक, देनदार, प्राप्य प्रपत्र आदि चालू परिसंपत्तियों में लगाने के लिए आवश्यक धन।

4.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

यदुकुल भूषण एवं ओ.पी. अग्रवाल : **व्यावसायिक संगठन के सिद्धांत** (नई दिल्ली : सुल्तान चंद एंड संस, 1988) अध्याय 1, 2 खंड पाँच।

वी.पी. सिंह एवं टी.एन छाबड़ा : **व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध का परिचय** (इलाहबाद : किताब महल, 1988) अध्याय 19, 20।

जी. एल जोशी, जी. एल. शर्मा, एल. एस सी. जोशी : **व्यावसायिक संगठन एवं प्रबंध** (दिल्लीः श्री महावीर बुक डिपो, 1988) अध्याय 15।

राम नारायण गोयल : **आधुनिक व्यवसाय संगठन एवं प्रबंध** (इलाहाबाद : किताब महल) अध्याय 1, 2 खंड चार

4.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) (i) असत्य (ii) सत्य (iii) असत्य (iv) सत्य (v) सत्य (vi) सत्य (vii) सत्य (viii) असत्य (ix)सत्य

2) (i) स्थायी (ii) कार्यशील (iii) दीर्घकालीन (iv) एक (v)दो से पांच (vi) स्थायी (vii) अल्पकालीन (viii) अल्पकालीन

3) (1) (iv) (2) (v) (3) (vi) (4) (vii) (5) (ii) (6) (iii) (7) (i)

बोध प्रश्न 2

1) i, iv, vi

2) ख, ग, घ

3) (i) असत्य (ii) सत्य (iii) असत्य (iv) सत्य (v) सत्य (vi) असत्य (vii) सत्य (viii) असत्य (ix) असत्य (x) सत्य

4) क) स्थायी परिसंपत्तियों में निवेश

ख) वाणिज्य बैंक

ग) माल के स्टॉक

घ) नकद कटौती की हानि

ड.) अल्पकालीन

च) तीन

4.10 अभ्यास के लिए प्रश्न

1) व्यवसाय में वित्त में महत्व का विवेचन कीजिए। स्थायी पूँजी तथा कार्यशील पूँजी में अंतर बताइये।

2) उन उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए जिनके लिए कार्यशील पूँजी की आवश्यकता होती है। कार्यशील पूँजी की आवश्यकताओं को निर्धारित करने वाले तत्वों का वर्णन कीजिए।

3) ऋण द्वारा पूँजी प्राप्त करने के क्या लाभ हैं?

4) स्वामित्व पूँजी से आपका क्या तात्पर्य होता है? इसके क्या लाभ हैं तथा इसकी क्या सीमाएं हैं?

5) स्थायी पूँजी प्राप्त करने के साधनों का वर्णन कीजिए।

6) अल्पकालीन पूँजी प्राप्त करने के कौन-कौन से साधन हैं। उनका विवेचन कीजिए।

7) ऋणपत्र निर्गमित करने के लाभों तथा दोषों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए। स्थायी पूँजी प्राप्त करने के साधन के रूप में इक्विटी पूँजी से इसकी तुलना कीजिए।

8) इक्विटी शेयर तथा पूर्वाधिकार शेयर निर्गमित करने के लाभों तथा दोषों की तुलना कीजिए।

9) सार्वजनिक निक्षेप द्वारा वित्त प्राप्त करने के क्या लाभ हैं? सार्वजनिक निक्षेप प्राप्त करते के लिए कौन-कौन सी वैधानिक औपचारिकताएं पूरी करनी पड़ती हैं?

10) अल्पकालीन वित्त प्राप्त करने के साधनों के रूप में 'आढ़त के कार्यों' तथा 'विनिमय पत्रों को बट्टे पर भुनाने के कार्य' का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

11) बैंक ओवरड्रॉफ्ट तथा कैश क्रेडिट संबंधी सुविधाओं से आप क्या समझते हैं? यह भी बताइये कि कैश क्रेडिट तथा ओवरड्रॉफ्ट के लिए किस प्रकार की जमानत की आवश्यकता होती है?

12) पूँजी-संरचना से आपका क्या तात्पर्य है? पूँजी-संरचना के संबंध में निर्णय लेते समय प्रबंधकों को किन बातों को ध्यान में रखना चाहिए?

टिप्पणी : ये प्रश्न आपको इस इकाई को अधिक अच्छी तरह समझने में सहायक होंगे। इनके उत्तर लिखने का प्रयत्न कीजिए। किन्तु अपने उत्तर विश्वविद्यालय को न भेजें। ये केवल आपके अभ्यास के लिए हैं।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

NOTES